अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

❑ मूल्य : 5.00

❑ अंक : 20

❑ 1-15 जून, 2014

❑ वर्ष : 37

सम्पूर्ण क्रांति का मेरा मतलब

भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, महँगाई, कुशिक्षा, भ्रष्ट चुनाव आदि तभी हल होंगे जब आज की सरकार और आज के समाज का भ्रष्ट और निकम्मा ढाँचा बुनियादी तौर पर बदल जायेगा। हमें प्रशासन, चुनाव की पद्धति, विकास की नीति-रीति, बाजार की खरीद-बिक्री, शिक्षा आदि सबमें परिवर्तन करना है ताकि जीविका के साधन और विकास के अवसर गरीब से गरीब व्यक्ति तक पहुँचे। इसलिए मैंने बार-बार सम्पूर्ण क्रांति की बात कही है। आप इस बात को अच्छी तरह समझ लें।

हमें लड़ाई सम्पूर्ण क्रांति की लड़नी है। इतनी बड़ी और व्यापक लड़ाई का मोरचा सिर्फ पटना या दिल्ली में नहीं है बल्कि गाँव-गाँव और शहर-शहर में है, हर बाजार और कार्यालय में है, हर विद्यालय और कारखाने में है। जहाँ अन्याय और अनीति है, वहाँ हमारा संघर्ष है।

–जयप्रकाश नारायण

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत

वर्ष : 37, अंक : 20
1-15 जून, 2014

सर्व सेवा संघ
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक
बिमल कुमार
मो. 9235772595
प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये
शुल्क
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in
Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. कविताएं 2
2. सम्पूर्ण क्रांति की विरासत... 3
3. नित्य विकासशील, अनासक्त...4
4. नखशिखान्त मानव... 6
5. अध्यात्म में पुरुषार्थ की... 8
6. सार्वजनिक धन की खुली... 10
7. वन में बाघ और जन में... 11
8. जड़ों में मट्ठा डालती... 12
9. सांस्कृतिक प्रदूषण और... 14
10. प्राकृतिक स्रोतों का... 15
11. धरती के धीरज की... 17
12. कुदरती खेती के अनुभव... 18
13. गतिविधियां एवं समाचार... 19
14. जयप्रकाश नारायण की... 20

कविताएं

वेदी

वह मुझे
ऐसी वेदी
दिखा रहा है
जो मुझे इतिहास में अमर कर जायेगी
हर वेदी का
हर एजेंट
ऐसा ही करता है
मैं किस वेदी को चुनूं
जबकि इतिहास का अंत हो चुका है

शांति का झंडा

सबके पास
डंडा है
एक अशांत डंडा
डरावने काम वाला
उनकी हैसियत के अनुसार
कम या अधिक दाम वाला
मगर किसी के पास नहीं है
शांति का झंडा
जैसे सबसे गैरज़रूरी
या सबसे महंगी चीज़ वही हो
जबकि चुनावी टोपी की तरह
एक भाव में
सबके डंडे में आ सकता है
कबूतर की छाप वाला
शांति का झंडा

गुंजाइश

रातरानी के फूलों ने
ख़ुश्बू से
और चांद ने
अपनी चांदनी से
वायुमंडल भर दिया है
फिर भी गुंजाइश है हमारे लिए
कि हम भी
अपने प्यार से भर दें इसे

–केशव शरण

गुब्बारा

फुला हुआ गुब्बारा लेकर हाथों में,
मुदितमना हो खेल रही थी बिटिया मेरी।
उछलकूद कर बार-बार वह उसे उड़ाती,
उसके प्रति वह दिखा रही थी प्रीति घनेरी॥

तनिक हवा के झोंके से गुब्बारा उड़कर,
डाली में जा फसा शाम की गोधूली में।
उचक-उचक कर लपक-लपक कर तन्मय होकर
थकित, व्यथित हो रही थी अपनी हमजोली में

वहीं कहीं पर बैठा मैं अपलक नयनों से,
देख रहा था बिटिया के अभिनव प्रयास को।
कई बार तो लगा उसे वह पा लेगी,
वामन रूप से नाप रही जैसे आकाश को॥
अश्रु प्रवाह नयनों से निस्सृत होकर अविरल,
लगा भिगोने उसके सुन्दर चेहरे को।
देख देख कर बिटिया के संताप, कष्ट को,
त्वरित पकड़ना चाहा मैंने गुब्बारे को॥

हाथ में मेरे ज्योंही वह गुब्बारा आया
फूट गया वह तत्क्षण विकृत रूप दिखाया।
उसकी हवा निकल कर अनन्त में लीन हो गयी,
गुब्बारे का फूटना एक सीख दे गयी॥

जीवन भी तो एक सुन्दर गुब्बारा है,
माया नगरी में हम कितना तन्मय होकर।
रंग-विरंगे गुब्बारों संग सदा खेलते,
अपने और पराये के भावों को खोकर॥

आज नहीं तो कल गुब्बार फूटेगा,
माया नगरी का तिलिस्म सब टूटेगा।
ईश्वर ने जो हवा भरा है जीवन में,
होगी अनन्त में लीन प्राण जब छूटेगा॥

–प्रो. बसन्ता

संपादकीय

सम्पूर्ण क्रांति की विरासत

सम्पूर्ण क्रांति के उद्घोष के 40 वर्ष बीत चुके हैं। सन् 1974 में जे. पी. के नेतृत्व में सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन ने देश की दिशा बदल दी थी। उसके पूर्व तक लोकसत्ता के निर्माण के लिए, ग्राम-स्वराज्य व लोकस्वराज्य के निर्माण के लिए सर्वोदय का जो आन्दोलन चला था, उसमें राज-सत्ता का प्रत्यक्ष विरोध शामिल नहीं था। यह बात स्पष्ट हुई थी कि ग्राम स्तर से या लोक-जीवन के स्तर से जो नया निर्माण करना है, वैकल्पिक रचना खड़ी करनी है, वह तो महत्त्वपूर्ण है ही। लेकिन यह भी महत्त्वपूर्ण है कि केन्द्रीकृत सत्ताओं एवं केन्द्रीकृत अर्थतंत्र का भी उसके साथ निषेध होता जाये। लोकशक्ति के प्रकट होने का एक माध्यम लोक-आन्दोलन भी थे।

एक बात यह भी स्मरण रखने की है कि सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन के पूर्व राजनीतिक दलों द्वारा भी अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध आन्दोलन किये गये थे। किन्तु उन आन्दोलनों की सोच में एक बात अन्तर्निहित थी। वह यह कि अन्ततः परिवर्तन राजसत्ता के माध्यम से होगा, लोक-आन्दोलन केवल दबाव बनाने का काम करेंगे। स्पष्ट था कि पार्टियों के लोक-आन्दोलनों से लोकशक्ति तो प्रकट होगी, लेकिन उससे लोकसत्ता के निर्माण का रास्ता नहीं निकलेगा।

सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन की सबसे बड़ी विरासत हमें यही मिली है कि निर्माण की दिशा में हम कैसे बढ़ सकेंगे। दूसरे लोक-आन्दोलन एवं वैकल्पिक रचना के अन्तःसम्बन्ध कैसे मजबूत होंगे, इन्हें भी रेखांकित करना होगा। सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन की एक अन्य उपलब्धि यह थी कि इसने शहरी, ग्रामीण, आदिवासी एवं अन्य सभी समुदायों के युवक-युवतियों एवं नागरिकों को इससे जोड़ा। सबके मन में एक आशा जगी कि उनका अपना स्वराज्य, लोक-स्वराज्य फलीभूत होगा।

सम्पूर्ण क्रांति की विरासत को आगे बढ़ाने के काम में जो लोग लगे हैं, उन्हें आज की चुनौतियों का भी सामना करना होगा तथा अपनी कमियों को दूर करने का भी उपाय करना होगा।

जहां तक चुनौती का सवाल है, पुरानी सारी चुनौतियों के अतिरिक्त अब एक नयी चुनौती भी सामने आ गयी है। वह पूंजी के वैश्वीकरण की एवं पूंजीवादी बाजार के वैश्वीकरण की है। पूंजी के वैश्वीकरण एवं पूंजीवादी बाजार के वैश्विक विस्तार के फलस्वरूप जल-जंगल-जमीन-खनिज एवं प्रकृति में उपलब्ध अन्य इकाइयों को लाभ के लिए बाजार के अन्तर्गत लाकर शोषण एवं दोहन का शिकार बनाया जा रहा है तथा इन पर निर्भर करने वाले समुदायों को या तो बेदखल किया जा रहा है या उनके श्रम को कम से कम मूल्य दिया जा रहा है। राजसत्ता भी इन्हीं शोषणकारी, दोहनकारी वैश्विक शक्तियों के साथ खड़ी हो गयी है। इस शोषण-दोहन से शहरों का व एक छोटे वर्ग में सम्पन्नता दिख रही है। शहरों एवं एक छोटे वर्ग की सम्पन्नता को 'विकास' की बड़ी उपलब्धि के रूप में प्रचारित किया जा रहा है तथा जिनका शोषण-दोहन हो रहा है उस पक्ष को पूर्ण रूप से छिपाया जा रहा है।

सम्पूर्ण क्रांति के आन्दोलन के समक्ष यह बड़ी चुनौती है कि वह विकास के इस कुत्सित चेहरे को उजागर करे।

आन्दोलन के संदर्भ में देखें, तो इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन का सामाजिक आधार क्या होगा। वैश्विक पूंजीवादी बाजार एवं इसकी व्यवस्थाओं के अन्तर्गत जिनका शोषण-दोहन हो रहा है, जिनकी जीविका के आधार को छीना जा रहा है, अब वही इस आन्दोलन के सामाजिक आधार बनेंगे। इन्हीं क्षेत्रों में तेज प्रतिरोध, बहिष्कार एवं रचना के कार्यक्रम चलाने होंगे। स्वराज्य का, लोक-स्वराज्य का अधिष्ठान यही क्षेत्र एवं यही लोग होंगे, शहर नहीं।

शहरी समाज में उन मूल्यों पर फोकस करना होगा, जिन मूल्यों के लिए हम संघर्ष कर रहे हैं। विकृत विकास के बजाय लोक-स्वराज्य एवं लोक-सम्प्रभुता को विमर्श के केन्द्र में लाना होगा। विकास के नारे ने स्वराज्य व लोक-सम्प्रभुता के मूलभूत प्रश्न को पीछे ढकेल दिया है। हमें इस बात को स्थापित करना होगा कि लोक-सम्प्रभुता के बिना राष्ट्र की सम्प्रभुता भी खतरे में है। लोक-सम्प्रभुता के माध्यम से ही ऐसा विकास होगा जिसमें सबकी भागीदारी और सबका योगदान होगा, सबका श्रम एवं सबका हिस्सा होगा।

अर्थात् लोकतांत्रिक मूल्यों एवं लोक-सम्प्रभुता के मूल्यों को एकाकार करने का काम सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन को करना होगा। इन मूल्यों की बुनियाद पर लोक-आन्दोलनों को खड़ा करना होगा तथा लोक-आन्दोलनों के माध्यम से लोकसत्ता का निर्माण एवं वैकल्पिक रचना के निर्माण के काम को आगे बढ़ाना होगा। इसके लिए कार्यकर्ता निर्माण एवं प्रशिक्षण का कार्य भी नियोजित करना होगा। इस प्रकार व्यापक आन्दोलन, सघन क्षेत्र आन्दोलन एवं कार्यकर्ता निर्माण (जिसमें नये मनुष्य की छवि दिखे) का कार्य एक साथ बढ़ाना होगा।

बिमल कुमार

नित्य विकासशील, अनासक्त विश्वमित्र

❑ मृत्युंजय प्रसाद

मेरी समझ में लोकनायक जयप्रकाश नारायण की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि नैतिक और मानसिक रूप से वे एक जीवन्त व्यक्ति थे, और अंत तक उनकी विचारधारा अनवरत चलती रही। यही कारण है कि उनकी मान्यताओं और धारणाओं में समय-समय पर परिवर्तन, फेर-बदल होते रहे हैं। उन्होंने जब जो चीज मानी, जिस सिद्धांत को स्वीकार किया, उसी के अनुसार आचरण भी किया। और, फिर जब उनकी विचार-यात्रा ने उन्हें ऐसे स्थान पर पहुंचा दिया, जहां पुराना विश्वास, पुरानी मान्यता उन्हें गलत लगी तो उन्होंने अपना आचरण अपनी नयी मान्यता के अनुरूप बना दिया। ऐसा करने में कई बार उन्हें बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी, किन्तु उन्होंने कभी निन्दा-स्तुति की, अथवा साथियों, मित्रों, सहकर्मियों, कॉमरेडों आदि के साथ चलने, सहारा देने या साथ छोड़ देने की तनिक भी परवाह नहीं की। वे अपनी अन्तरात्मा के सत्य को पहचानने का प्रयत्न बराबर करते रहे। उस सत्य का जब जैसा रूप देखा, तब उसे उसी रूप में स्वीकार करते रहे। परिवर्तन, यदि वह क्षुद्र स्वार्थ द्वारा प्रेरित न हो, तो वही जीवन का सबसे बड़ा लक्षण है। नहीं तो एक बार जो मान लिया, सो मान लिया, फिर चाहे उसके विरुद्ध कितने ही प्रमाण और तथ्य क्यों न मिलते रहें। यह बात उन लोगों में पायी जाती है, जो देखना, सुनना और सोचना छोड़ देते हैं। इसी कारण कुछ नया सोचना-विचारना भी उनसे बन नहीं पाता। ऐसे लोग मानसिक, वैचारिक और नैतिक दृष्टि से जीवन्त व्यक्ति नहीं कहे जा सकते। इसी अर्थ में मैं लोकनायक को जीवन्त मानता था, देखता था और जानता था।

ऐसे व्यक्ति का विरोध या संघर्ष अपने साथियों से, मित्रों से और निकट के संबंधियों से हो ही जाता है। जिनमें स्वार्थ की मात्रा कुछ अधिक होती है, वे इस विरोध को वैचारिक, राजनीतिक अथवा नैतिक स्तर से नीचे लाकर व्यक्तिगत स्तर पर खड़ा कर देते हैं। स्वार्थ भावना न होने और नैतिक विचारों से पूरी तरह प्रेरित होने के कारण लोकनायक ने अपनी ओर से विचार-विभिन्नता, असहमति या राजनीतिक मतभेद के कारण कभी किसी के साथ व्यक्तिगत स्तर पर अपने संबंध बिगड़ने नहीं दिए। इसके विपरीत, दूसरों ने उनके साथ के अपने मतभेद और विरोध को व्यक्तिगत स्तर पर उतारने में कभी कोताही नहीं की। इसका सबसे बड़ा और ज्वलन्त उदाहरण है, लोकनायक का श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रति वात्सल्य। जयप्रकाशजी स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नेहरू को अपना बड़ा भाई मानते थे, और इसी संबंध के कारण, जबकि कुमारी इन्दिरा नेहरू 14-15 साल की बच्ची थी, तभी से वे उन्हें बेटी या भतीजी मानते रहे। यही प्रेम उनका श्रीमती गांधी के प्रति भी रहा। किन्तु जब उन्होंने समझ लिया और उन्हें विश्वास हो गया कि देश के हित में आवश्यक है कि इन्दिरा-सरकार या तो स्वयं अपने-आपको सुधार ले, या उसे गिराना चाहिए, और उसकी जगह अच्छी सरकार लानी चाहिए, तब व्यक्तिगत संबंध उनके मार्ग में बाधक नहीं बना। इन्दिरा सरकार का विरोध करते हुए, उसे गिराने का हर अहिंसक और प्रजातांत्रिक प्रयत्न करते हुए भी वे अपनी 'इन्दु बेटी' के घर बीच-बीच में चले जाया करते थे। यहां तक कि जब चण्डीगढ़-जेल से छूटने के बाद वे बम्बई के जसलोक अस्पताल में ले जाये गये और वहां डायालिसिस के उपचार से उनका रोग कुछ अंकुश में आया, तो एक दिन वे बिना बुलाए और बिना पूछे ही अपनी 'इन्दु बेटी' से मिलने उनके घर दिल्ली पहुंच गये। इसके कारण लोकनायक के कई साथियों के मन में उलझन पैदा हुई, लोगों ने बुरा माना और लोकनायक को याद दिलायी कि इन्हीं देवीजी ने सारे देश को और देश के नेता के नाते आपको भी बेकसूर जेल में बन्द किया था और तरह-तरह की यातनाएं दी थीं, ताकि इनकी गद्दी बनी रहे और बची रहे। किन्तु लोकनायक के मन पर अपने साथियों की इन बातों का कोई असर नहीं हुआ। वे प्रधानमंत्री का विरोध कर रहे थे, प्रधानमंत्री को गद्दी से उतारने के उपाय करने में लगे थे, किन्तु घर में तो वही प्रधानमंत्री उनकी बेटी या भतीजी थी। भला अपने इस संबंध को वे कैसे नकारते? लोकनायक का यही सबसे बड़ा उल्लेखनीय बड़प्पन था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दूसरे उनसे चाहे जिस तरह की शत्रुता का भाव रखते हों, किन्तु स्वयं लोकनायक न तो किसी के शत्रु थे और न हो सकते थे। उनका विरोध, उनकी शत्रुता, सामने वाले के गलत आचरण से, उसकी सामाजिक या प्रशासनिक बुराइयों से थी, किसी व्यक्ति-विशेष से नहीं। इसलिए वे अजातशत्रु, यानी जिसका कोई शत्रु होता ही नहीं, भले ही न कहे जाएं, किन्तु विश्वमित्र वे अवश्य कहे जायेंगे, क्योंकि उनके हृदय में सबके लिए मित्रता, करुणा, प्रेम और वात्सल्य की धारा सतत् बहती रहती थी। इसी तरह भ्रष्टाचार और अन्याय आदि के घोर विरोध की धारा भी उनके मन में बहती रही। यही कारण था कि उनके जीवन में कटुता कभी आयी ही नहीं, या आयी भी, तो बहुत कम आयी, पर माधुर्य उनमें सदा बना रहा। अपनी इस भावना के कारण उनके राजनीतिक जीवन में एक बहुत बड़ी कमजोरी भी आ जाती थी। वे बहुत बार बड़ी आसानी से किसी के दोष, त्रुटि, कमजोरी या धोखाधड़ी के शिकार हो जाते थे, क्योंकि

उनकी निगाह में सामने वाले के गुण ही पहले पड़ते थे, और बुरा-से-बुरा आदमी भी निर्गुण तो कभी होता नहीं। दोष जब तक बिलकुल उजागर होकर दिखायी न पड़ने लगे, तब तक वह उनकी निगाह में आता ही नहीं था।

लोकनायक का एक और बड़ा गुण था, निर्लिप्तता। उन्होंने अनेक संस्थाएं बनायीं। पुरानी संस्थाओं को सुचारु रूप से चलाने में अपना कंधा लगाया, किन्तु किसी को इस अर्थ में अपना नहीं माना कि उसे रखने या छोड़ने में एक मिनट भी सोचना पड़ जाय। जिस तरह गांधीजी ने साबरमती के अपने सत्याग्रह-आश्रम को बात की बात में छोड़ दिया और फिर उसकी तरफ पहले की दृष्टि से पीछे मुड़कर कभी ताका भी नहीं, उसी तरह की वृत्ति लोकनायक की भी रही। जब तक काम पूरा करना है, पूरी शक्ति लगाकर करना है। जब छोड़ देना है, तो तुरंत ही छोड़ देना है। बाद में उनके मन में उसके लिए किसी भी तरह का कोई मोह या लोभ रहता नहीं था। यह निःस्वार्थभाव, यह निर्लिप्तता ही सही अर्थों में अनासक्ति-योग है, और लोकनायक ने गीता का नाम लिये बिना ही इस योग को साध लिया था।

जयप्रकाशजी में गुरुजनों के प्रति अपार सम्मान-भाव थी, और यथायोग्य अतुलनीय प्रेम था। इसी प्रकार अपने समवयस्क कार्यकर्ताओं और संगी-साथियों के प्रति उनका व्यवहार हार्दिक मित्रता का और प्रेम का बना रहता था। अपने से छोटों के प्रति उनमें वत्सलता बनी रहती थी। किसी के साथ अपने सामाजिक सम्बन्ध निबाहने में लोकनायक ने कभी कोई त्रुटि नहीं होने दी। उनके सम्पर्क में जो कोई भी आये, या वे जिनके सम्पर्क में आए, सब कोई उनके प्रेम और सौहार्द से प्रभावित होते रहे। परन्तु जहां कहीं विचारों, सिद्धांतों और आदर्शों का प्रश्न उठा, वहां सामाजिक संबंधों का कोई असर उनके विचारों, सिद्धांतों और आदर्शों पर नहीं पड़ा। इसी तरह असहमति, विचार-भिन्नता या मार्ग-भिन्नता का भी कोई प्रभाव उन्होंने अपने सामाजिक संबंधों पर नहीं पड़ने दिया। महात्मा गांधीजी उनके लिए केवल पिता-स्वरूप नहीं थे, बल्कि पिता से भी बढ़कर, वे उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीया प्रभावतीजी के पिता के स्थान पर थे। माता-पिता अथवा सास-ससुर का-सा आदर, प्रेम और वात्सल्य उन्होंने माता कस्तूरबा गांधी से और बापू से पाया था, और बेटे या जमाई के नाते जयप्रकाशजी ने भी उनको वैसा ही सम्मान और प्रेम दिया था, किन्तु गांधीजी के जीवन-काल में वे न गांधीवादी बने, न बन सके। गांधीजी के जाने के बाद ही वे सर्वोदयी और अहिंसक गांधीवादी बन पाये। कुछ ऐसा ही संबंध उनका स्वर्गीय राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद के साथ भी रहा। जब जयप्रकाशजी गांधीवादी बन गये, अथवा अहिंसक सर्वोदयी बन गए, तभी वे विचारों में राजेन्द्रप्रसादजी के निकट आ सके। यही बात समवयस्क कार्यकर्ताओं के साथ भी रही। अपने राजनीतिक जीवन के आरम्भिक काल के अपने बहुत-से साथियों से उनका मतभेद इसलिए हो गया कि लोकनायक की विचार-यात्रा निरंतर आगे बढ़ती रही और उनके संगी-साथी विचार की दृष्टि से पीछे छूटते गये। फिर भी उनके साथ के अपने व्यक्तिगत सौहार्द में उन्होंने कभी कोई अंतर या कटुता अपनी ओर से नहीं आने दी। व्यक्तिगत रूप में मैं यह कहना चाहूंगा कि मेरे लिए वे मेरे बुजुर्ग थे, पर बहुत बड़े बुजुर्ग नहीं। पारिवारिक दृष्टि से मेरे उनके साथ कम-से-कम तीन संबंध रहे, जिनमें से दो में वे मेरे बड़े बुजुर्ग होते थे, और सबसे निकट के संबंध की दृष्टि से वे मेरे बड़े भाई थे। इसलिए हमारे साथ वही बड़े और छोटे भाई का संबंध निभता था, और जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा ही संबंध बड़ी सुन्दरता के साथ वे निभाते रहते थे।

विचार के स्तर पर मैं सन् 1974 के मध्य में, यानी जून, 1974 में ही लोकनायक के नेतृत्व को पूरी तरह स्वीकार कर सका। अक्टूबर, 1974 के पहले सप्ताह में बिहार-बंदी के अवसर पर जब मैं सचिवालय के पूर्वी द्वार पर पहुंचा तो देखा कि लोकनायक वहां पहले से ही छात्र-संघर्ष समिति के सदस्यों और दूसरे सत्याग्रहियों के साथ बैठे हुए थे। वहां मुझे देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मुझसे स्पष्ट ही पूछा : ''आप सत्याग्रह देखने आये हैं या जेल जाने की भी आपकी तैयारी है?'' जवाब में मैंने कहा : ''तैयारी तो पहले से की नहीं जाती है, किन्तु आगे बढ़े पांव अब पीछे नहीं लौटेंगे।'' सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए, और मुझे पश्चिमी फाटक पर ले जाकर बैठा गये। लेकिन उस दिन मेरी गिरफ्तारी हुई नहीं। दूसरे दिन सुबह 9 बजे मुझे सचिवालय के पास ही गिरफ्तार कर लिया गया। लोकनायक एक घंटे के बाद घूमते-फिरते उधर आये और मुझसे कैदी के रूप में मिलकर बहुत ही प्रसन्न हुए। बहुतेरी बातों में उनसे मतभेद होते हुए भी कभी हमारे मन में भेद नहीं पड़ा। उन्होंने पड़ने ही नहीं दिया।

इसके बाद जो कुछ हुआ, वह तो अब इतिहास का अंग बन चुका है। शरीर से सब तरह लाचार होते हुए भी उन्होंने जनता पार्टी बनायी। विभिन्न विचारों, आदर्शों और सिद्धांत वालों को एक सूत्र में बांधकर लोकसभा के चुनावों में जनता पार्टी को विजयश्री दिलवायी और इन्दिरा-सरकार को हटा करके उसकी जगह जनता-सरकार बनवायी। किन्तु जनता पार्टी के हम सभी सदस्य अपना घटकवाद नहीं छोड़ सके। अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए हमने जनता पार्टी तोड़ी, जनता-सरकार गिरायी, और इस तरह हमारे एक नेता के जीवन की साध पूरी हुई! इन सब बातों को लेकर, जनता-सरकार बनने के थोड़े दिनों बाद ही, जनता वालों के लिए लोकनायक जयप्रकाश नारायण की आवश्यकता घटती गयी, उनकी बातों, सलाहों, मशविरों और मार्गदर्शन का मूल्य गिरता ही गया। बाद में

अंतिम चोट तो ऐसी पड़ी कि यमराज से भी जूझने वाले जयप्रकाशजी के मन में जीने की चाह ही नहीं रह गयी, बल्कि यों भी कह सकते हैं कि वे मन-ही-मन मौत की कामना करने लगे। जो काम आपात्काल के चलते चण्डीगढ़ के अस्पताल, उसके जेल-वार्ड में, नहीं हो सका, और पटना में जयप्रकाशजी के शव की निष्फल प्रतीक्षा की जाती रही, वही काम हमने, हमारे नेताओं ने पूरा कर दिया! फिर वे ही सब नेता जयप्रकाशजी के शव के दर्शनों के लिए दिल्ली, बम्बई और कलकत्ता से हवाई जहाजों में बैठकर पटना आये और उनकी चिता पर फूल चढ़ाकर वापस चले गये।

अब लगता है कि लोकनायक ठीक समय पर गये। अगर वे कुछ दिन और रह जाते, तो और अधिक दुःखी होकर जाते, और तब फूल-मालाएं भी उनके शव पर कुछ कम ही चढ़तीं। *('जयप्रकाश' से)*

सम्बन्धों की स्वस्थता व शुद्धता जरूरी

मैं यह नहीं मानता कि सब पूँजीपति और सब जमींदार अपनी जन्मजात आवश्यकता के फलस्वरूप शोषक हैं और न मैं यह मानता हूँ कि उनके और आम जनता के हितों में कोई बुनियादी या अमिट विरोध है। हर प्रकार का शोषण शोषित के सहयोग पर आधारित है, फिर वह सहयोग स्वेच्छा से किया जाता हो या लाचारी से। इस सचाई को स्वीकार करना हमें कितना ही अप्रिय क्यों न लगे, फिर भी सचाई तो यही है कि यदि लोग शोषक की आज्ञा न मानें तो शोषण हो ही नहीं सकता। लेकिन उसमें स्वार्थ आड़े आता है और हम उन्हीं जंजीरों को अपनी छाती से लगाये रहते हैं जो हमें बाँधती हैं। यह चीज बन्द होनी चाहिए। जरूरत इस बात की नहीं है कि पूँजीपति और जमींदार खतम कर दिये जायँ, बल्कि इस बात की है कि उनके और आम लोगों के बीच आज जो सम्बन्ध हैं उसे बदलकर ज्यादा स्वस्थ और शुद्ध बनाया जाय।

('सिलेक्शन्ज फ्रॉम गांधी' से) **–महात्मा गांधी**

नखशिखान्त मानव

❑ वेल्स हंगेन

किसी समय जो एशिया के सबसे अग्रगण्य समाजवादी के रूप में जाने-माने जाते थे, वे जयप्रकाशजी आज भी भारत में बहुत ही लोकप्रिय हैं। उनकी व्यथित और मथित अन्तरात्मा में मानवजाति के सातवें हिस्से की वेदना प्रतिबिम्बित होती रहती है। मुग्धावस्था को पार कर चुके इस युग में वे आज भी महात्मा गांधी के विचारों और आदर्शों का अनुसरण करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। गांधी ने उनको भारतमाता का सर्वश्रेष्ठ मार्क्सवादी कहा था। आजकल बहुतेरे भारतवासी उन्हें सर्वश्रेष्ठ गांधीवादी कहते हैं। विचारधारा की खोज में उनकी अनन्त यात्रा ने उनको राजनीति के क्षेत्र का एक पथिक-सा बना दिया है, और तिस पर उनकी यह खोज-यात्रा भारतीय विचार के स्थिर जल में आज भी लहरें उत्पन्न करती रहती है। वे भारत के सबसे आगे माने जाने वाले आलोचक, प्रतिष्ठित मतों के विरोध में अपनी असहमति व्यक्त करने वाले, साँचे में ढली एकरूपता का सदा विरोध करने वाले, और उन उद्देश्यों के लिए लगातार जूझते रहने वाले हैं, जिनके बारे में आम तौर पर लोग यह मान लेते हैं कि "अब इसमें से कोई चीज निकलेगी नहीं।" जहां दूसरे लोग हलके और कंगाल ढंग से सच्चे साबित होते हैं, वहां यह एक ऐसा मनुष्य है, जो खानदानियत के साथ झूठा साबित होने के लिए ही जनमा है!

जयप्रकाशजी कभी मंत्री नहीं बने, और न उन्होंने कभी कोई सरकारी पद या ओहदा ही सँभाला। व्यावहारिकता में उन्हें कोई रुचि नहीं है। वे जिस प्रकार की राजनीति चलाते हैं, असल में वह असम्भवता की एक कला होती है। रोजमर्रा की चाल-ढाल वाली जिन्दगी से वे हमेशा एक कदम अलग ही रहते हैं, या तो प्राथमिता देने की अपनी तीव्र इच्छा के कारण वे राजनीतिक बनवास में और दार्शनिक शून्यावकाश में पहुंच गये हैं। वे कभी-कभी परस्पर विरोधी, पहेलीरूप, सन्दिग्ध, अथवा बिलकुल उलझन-भरे ही होते हैं। इसके बावजूद, जब हम सोचते हैं कि नेहरू के बाद कौन? तो जयप्रकाश का व्यापक और दूरदर्शी चित्त और उनकी भयमुक्त अन्तरात्मा भारत के लिए अनिवार्य सिद्ध हो सकती है।

जे. पी. की मुख-मुद्रा कुछ गंभीर और अन्यमनस्क अध्यापक जैसी है। आधी किनारवाला उनका चश्मा संजीदगी की उनकी चमक को बढ़ाता रहता है। रूप उनका गोरा है, और जैसा कि विन्सेण्ट शीन ने कहा है, "उनके रंगढंग में, उनकी आवाज और बातचीत में, आदि से अन्त तक एक प्रकार की कुलीनता व्यक्त होती रहती है। उनमें अविचल स्वस्थता और गांधी की-सी प्रसन्न गंभीरता है।" उनकी आवाज धीमी, सुसंवादी और थोड़ी थकी-थकी-सी होती है। एक धर्माचार्य की-सी अदा के साथ कही गयी उनकी कुछ बातों पर से हम उनकी जैसी कल्पना करते हैं, उसकी तुलना में उनका व्यक्तित्व बहुत ही मोहक है। वे विनयशील, उदारमना और नम्र दिखायी पड़ते हैं। उनकी वक्रोक्तियां, उनके व्यंग्य, कभी बहुत गहरे नहीं होते। भारत के दूसरे समकालीन राजपुरुषों में जिसके विशेष दर्शन नहीं होते, उस कोटि की सुरुचि, संस्कारिता और अनंत धैर्य के दर्शन हमें जयप्रकाशजी में होते हैं। मोरारजी देसाई से भिन्न जयप्रकाशजी की गांधीवादी साधुता कभी यंत्रवत् या दूसरों के लिए बोझ रूप नहीं बनती। उदाहरण के लिए, फलों-संबंधी अपने ज्ञान पर उन्हें नाज है, और वे खुल्लमखुल्ला यह बात कह सकते हैं कि फल उन्हें बहुत पसंद हैं। वे शाकाहारी हैं और शक्कर की बीमारी के मरीज हैं, फिर भी अपने आहार

के बारे में वे कभी गुलगपाड़ा या दिखावा नहीं करते। वे एक ऐसे विश्व नागरिक हैं, जो सबके साथ घुलमिल जाते हैं। इसके बावजूद उन्होंने अपनी निराली और सुस्पष्ट भारतीयता कभी छोड़ी नहीं है।

अपने जीवन का एक लम्बे-से-लम्बा दिन मैंने उनके साथ की बातचीत में पटना में बिताया था। वैसे, जयप्रकाश की उपस्थिति कभी उकताने वाली तो होती नहीं, लेकिन उनके एक छोटे-से कमरे में, जहां हवा आती-जाती नहीं है, दिनभर पलथी मारकर फर्श पर बैठना पश्चिम के किसी भी आदमी को बहुत थका देता है। जब जयप्रकाश पटना में होते हैं, तो वे एक कन्याशाला के थोड़े हिस्से का उपयोग अपने निवास के रूप में करते हैं। उनके कमरे में सिर्फ चटाई और कुछ तकिए थे। कमरे में चारों ओर काँच लगी आलमारियां पीली पड़ रही पुस्तकों के साथ कुछ कागज-पत्रों से भरी थीं। सारा माहौल मुझे किसी बड़े राजपुरुष के कामकाजी कमरे-जैसा नहीं, बल्कि एक म्यूजियम-जैसा लगा। कमरे की छत में लगा एक पुराना सा पंखा मुश्किल से थोड़ी हवा फेंक पाता था।

लेकिन जैसे ही मुस्कुराते हुए चेहरे के साथ जयप्रकाश कमरे में दाखिल हुए, वैसे ही कमरे की सारी सुस्ती और उकताहट एकदम गायब हो गयी। फर्नीचर की कमी के लिए उन्होंने मुझसे माफी मांगी और मुझे समझाया कि उनको नीचे बैठकर काम करने की आदत है। एक अध्यापक की-सी बारीकी के साथ उन्होंने मुझे समझाया कि उनको नीचे बैठकर काम करने की आदत है। एक अध्यापक की-सी बारीकी के साथ उन्होंने मुझे समझाया कि मुझको अपनी पीठ के पीछे तकिया ठीक किस तरह से लगा लेना है। मैंने उनके आरम्भिक जीवन के विषय में एकाध प्रश्न पूछा, और उन्होंने कोमल आवाज में अपनी बात रख दी।

दूसरे कई भारतीय राजपुरुषों की तुलना में जयप्रकाशजी की अपनी एक ताजगी भरी खासियत यह है कि वे अपनी बातचीत में दिखावे को और घिसी-पिटी बातों को फिर-फिर दोहराते रहने को हमेशा ही टालते हैं। वे आपके साथ घंटों बोलते रहेंगे, पर कभी बातूनी नहीं लगेंगे। शब्दों का उनका चयन उनके एक-एक वाक्य को सरस और आनन्दप्रद बना देता है। वे अपने अलग-अलग कामों और कदमों को समझाने की कोशिश जरूर करते हैं, लेकिन अपनी गलतियां छिपाने की कोशिश वे कभी नहीं करते। आमतौर पर राजपुरुषों में अपने मुँह अपनी बड़ाई करते रहने की जो एक लत पायी जाती है, वह आपको जयप्रकाशजी में नहीं दिखायी पड़ती। वे यह मानते हैं कि अपनी निष्ठा और साफ नीयत के बारे में कसमें खा-खाकर दूसरे को कुछ कहते रहना जरूरी नहीं है। अपनी कड़ी-से-कड़ी राय जाहिर करने में वे डरते नहीं। जब कहीं उन्हें कुछ छल-कपट या प्रपंच-जैसा मालूम होता है तो तुरन्त ही उसकी निन्दा करने में वे कभी हिचकिचाते नहीं। फिर भी मैंने उनमें कभी किसी तरह का डंक, कड़ुवाहट या वैरभाव नहीं देखा। इस मामले में वे कृष्ण मेनन की तुलना में बिलकुल दूसरे छोर पर हैं।

उस दिन जयप्रकाश ने अपने जीवन के अत्यन्त रोमांचकारी अनुभव एक चिकित्सक की-सी अनासक्ति के साथ मुझे सुनाए। लेकिन जब वे भारत के गांवों में रहने वाले लोगों की हालत के बारे में कहने लगे, तो प्रायः स्वस्थ और शान्त प्रतीत होने वाले उनके चेहरे पर दबाकर रखी गयी वेदना के बादल उमड़-घुमड़ कर छा गये। मैंने पहली बार उनको इस तरह चिन्ता में डूबा देखा। उनके हाव-भाव अधिक दृढ़ बन गए। उन्होंने कहा कि भारत के लोग जर्मनों, जापालियों या चीनियों से किसी तरह भिन्न नहीं हैं। किन्तु लम्बे समय के विदेशी शासन ने उनको पूरी तरह पंगु बना दिया है। हड्डी टूटने के बाद शरीर के किसी अंग को पलास्टर में रखना पड़ता है और प्लास्टर हटाने के बाद उस अंग में जो कमजोरी पायी जाती है, वैसी हालत आज भारत की जनता की हो गयी है।

मैं देख रहा था कि उनका शरीर तो वहां हाजिर था, पर उनका चित्त भारत के धूल भरे गांवों में और गांवों के बेहाल-कंगाल लोगों के बीच पहुंच गया था। अपने इन देशबंधुओं की हालत को कैसे बदला जाय? बोलते-बोलते वे एकाएक चुप हो गए और गमगीन बनकर सूनी आंखों से ताकते रहे। मुझे उनसे कुछ और सवाल पूछने थे, पर उस समय के उनके मौन को भंग करना मुझे बिलकुल गलत लगा, पाप-सा प्रतीत हुआ। मैं नहीं जानता कि बिना कुछ बोले हम दोनों वहां कितनी देर तक बैठे रहे?

आखिर एक छिपकली ने जयप्रकाश को उनके उस दिवा-स्वप्न से उतारकर धरती पर खड़ा कर दिया। वे सहसा बोले : ''अरे, बाहर कोई है? इस आलमारी को जल्दी खोलो। बेचारी न जाने कितनी देर से इसमें बंद पड़ी है।'' सेक्रेटरी ने आकर पुस्तकों से भरी कांचवाली आलमारी तुरंत खोली। जब वह छोटी-सी छिपकली फौरन कूदकर बाहर चली गयी, तब जयप्रकाश की चिन्ता दूर हुई।

मैं सोचता रहा कि भारत की मिट्टी में ऐसी क्या चीज है कि एक जमाने में वज्र का-सा मनोबल रखने वाला क्रांतिकारी व्यक्ति आलमारी में बन्द छिपकली को देखते ही इतना बेचैन हो उठता है। अकसर मैं सोचता हूं कि भारत के लोग मनुष्यों की अपेक्षा पशुओं का अधिक ध्यान रखते हैं, पशुओं के बारे में अधिक चिन्ता करते हैं। लेकिन जयप्रकाश के विषय में यह बात सच नहीं है। वे तो प्रत्येक व्यक्ति की और प्रत्येक बात की चिन्ता करते हैं। और यही तो उनकी एक कठिनाई है।

('जयप्रकाश' से) ❑

अध्यात्म-सौरभ

अध्यात्म में पुरुषार्थ की भूमिका

❑ डॉ. रामजी सिंह

'अ'ध्यात्म' की जितनी भी व्याख्या की जाय, वह 'अवाच्य' और 'अपरिभाषेय' ही रहेगा। ''यतो वाचो निर्वन्तते अप्राप्य मनसा सह।'' वहाँ न आँखें जाती हैं, न वाणी, न मन, न चेतना ही जा सकती है-''न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाक गच्छति, न मनो न विद्धो विजानात।'' लेकिन जो उसे जान लेता है, वह सबको जान लेता है। यानी जो तत्त्व (आत्मा) को जान लेता है, वह सबको जान लेता है। ''जे एग्गं जानई, से सर्व्वं जानई।'' इसीलिए ''अध्यात्मक विद्या विद्यानाम्।'' कहा गया है। वास्तव में अध्यात्म प्रत्यक्ष या अनुमान, शब्द या प्रमाण का विषय नहीं, बल्कि अनुभूति का विषय है। इसका यह अर्थ नहीं कि अध्यात्म प्रत्यक्ष या अन्य ज्ञान-प्रमाण का विरोध है। हाँ, वह उनसे परे है। शास्त्र में कहा गया है—''ज्ञान विज्ञानं सहितम्।'' अतः इस प्रकार की अनुभूति जिसे हम 'प्रातिभ ज्ञानं अपरोक्षानुभूति' कहते हैं, वह ज्ञान-विज्ञान का कतई विरोधी नहीं है, हाँ वह इनसे परे अवश्य है और वे सब इसमें समाहित हैं। अतः 'अध्यात्म' ज्ञान को शब्दों में यदि बाँधना ही है तो उसे 'आत्मज्ञान' कह सकते हैं, लेकिन जहाँ 'तत् और त्वम्', अहं और ब्रह्म का कोई भेद नहीं रहता। ''सर्व खलु इदं ब्रह्म'', ईशावास्यमिदं सर्वम्।''अध्यात्म कोई 'वस्तु' नहीं बल्कि एक 'विचार' माना जा सकता है। यहाँ विचार ही सर्वस्व है। भाव ही दुर्गा या काली है और विचार ही परमेश्वर है। आज तो विज्ञान ने सांख्य के पुरुष-प्रकृति या देकार्त्त के 'मैटर' और 'माइंड' का द्वैत बहुत कुछ समाप्त कर दिया है। जड़ (मैटर) एवं शक्ति (एनर्जी) का द्वैत तो परमाणुवाद ने मिटा दिया है। अब तो विज्ञान भी आज केवल अणु (एटम) या उसके 'एलेक्ट्रोन' और 'प्रोटोन' या फिर 'पोजीट्रोन' या 'नाइट्रोन' में ही जड़ जीव और चेतना तीनों को अन्तर्भूत कर देता है। इस दृष्टि से आज हमारे समक्ष एक चिदात्मक विश्व की प्राक्-कल्पना अधिक ग्राह्य होगी। हम तो अभी तक सौर-मंडल का भी तथ्य ढूँढ़ नहीं पाये और जेम्स जीन्स ने जिस रहस्यमय विश्व ("The Mysterious universe") की बातें की हैं और जिसमें इस सौरमंडल सरीखे असंख्य-अगणित सौरमंडल हैं। पता नहीं विज्ञान वहाँ तक कब तक पहुंचा या पहुंचेगा या नहीं भी पहुंचेगा। यह कौन जानता है? अनन्त के विषय में यही अनिश्चय ऋग्वेद के नासदीय-सूक्त में है—''नासीद्रजो न व्योमा परोयत्।''

ब्रह्माण्ड के समस्त-विस्तार को जानना और समझना एक असंभव-संभावना है। लेकिन हम यदि केवल अपने को जान लें तो बहुत है। शायद हम सूक्ष्म से स्थूल, अणु से आकाश को जानने का प्रयास करें। प्रसिद्ध नोबुल पुरस्कार विजेता और वैज्ञानिक एलिक्सेस कैरेल ने अपनी पुस्तक ''मैन द अननोन'' में बताया है कि आधुनिक विज्ञान ने भौतिकी, रसायन, भूगर्भ, जीव आदि अनेकों क्षेत्रों में अपने आविष्कार किये हैं लेकिन अभी तक मानव के सुख-शांति प्राप्त करने का ''मानव विज्ञान'' (साइंस ऑफ मैन) को नहीं जान पाया है। नारद ने भी सनत्कुमार को कहा था—''भगवो मंत्रवित् अस्मि, न आत्मवित्।'' शंकराचार्य नारद की इस निरीहता पर कहते हैं—''सर्वविज्ञान, साधन-शक्ति सम्पन्नस्यअपि नारऽस्य देवो श्रेयो न बभूव।'' आधुनिक मानव चांद पर जा पहुंचा है, अंतरिक्ष की भी सैर कर रहा है लेकिन वह सुख और शांति (श्रेय) से दूर है। भौतिकवाद के चक्रवात में आधुनिक मानव दयनीय स्थिति में है क्योंकि वह अपने को जान नहीं सका। सुकरात से लेकर रमण महर्षि तक से एक ही प्रश्न है—''मैं कौन हूं?'' और एक ही संदेश है, ''अपने को जानो'' (Know thyself)। आत्मज्ञान के बिना हमारा समस्त ज्ञान निर्जीव एवं निष्प्राण है। आज इसी चक्रवात में फँस कर हम अपने जीवन का ध्येय विस्मृत कर रहे हैं। आज हमारा चरम लक्ष्य अधिकाधिक 'सत्ता', 'सम्पत्ति' और 'ज्ञान' (जानकारी) अर्जन करना है। लेकिन भोगवाद की कोई सीमा नहीं हो सकती ''तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा।'' इसी को हम दूसरे शब्दों में कांचन, कामिनी या कीर्ति की अतृप्त आकांक्षा के रूप में देखें तो भोगवाद का विरोधाभास और उससे उत्पन्न अतृप्त कामना सहज ही समझ सकते हैं। इसीलिए कठोपनिषद् में यमराज ने नचिकेता को प्रेय-श्रेय-विवेक बताया। भगवान बुद्ध ने भी धम्मपद में ''पिय वग्गो'' और ''सिय वग्गो'' में प्रेय-श्रेय के जीवनादर्श को स्पष्ट किया। मानव को केवल हाड़-मांस का लोथड़ा मान लेना अपूर्णता है। मनुष्य भौतिक-जैविक-मनोवैज्ञानिक के साथ-साथ आध्यात्मिक तत्त्व भी है। अतः ज्ञान-विज्ञान के साथ अध्यात्म के साथ समन्वय पर जोर दिया। ''अध्यात्म को जोड़ना आवश्यक है। इस युग के महावैज्ञानिक आइन्सटीन ने इसीलिए विज्ञान और अध्यात्म के बिना विज्ञान अंधा है और विज्ञान के बिना अध्यात्म पंगु है।'' उसी तरह श्रेय के बिना प्रेय मानव को दानव बना देगा और फिर शुम्भ-निशुम्भ की तरह परस्पर युद्ध में विनष्ट हो जायेगा। आत्मतत्त्व को भूल कर हम मानव की सही व्याख्या नहीं कर सकते। उसी प्रकार केवल इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या मानवसंस्कृति की अपूर्ण व्याख्या है। मानव केवल अर्थ-मानव नहीं है। उसका शरीर, प्राण या मनस्तत्त्व तभी तक काम करता है जब तक वह आत्मतत्त्व है। ''वह है तभी तो संचरित यह प्राण है, जो कर रहा है क्रीड़ा प्रकृति की गोद में।''

दुर्भाग्य है कि इतने स्थूल उदाहरण से भी हम आत्मतत्त्व को समझ तो नहीं ही पाते, उसके विपरीत हम अध्यात्म-तत्त्व को कभी 'अंधविश्वास', कभी 'चमत्कार', कभी धार्मिक आख्यान या कर्मकांड का पर्यायवाची समझने लग जाते हैं। यही कारण है कि हम अकसर

❑ *पूर्व सांसद व कुलपति, 104, संन्याल इन्क्लेव, बुद्ध मार्ग, पटना - 800 001 मो. 09431213974*

अध्यात्म को अज्ञान या अंधविश्वास से कभी धार्मिक विधान, शास्त्र तथा कर्मकांड और रूढ़ियों के रूप में देखते हैं।

अध्यात्म का आधार सत्य और केवल सत्य है। जो है या जिसका अस्तित्त्व है, वही सत्य या अध्यात्म है। हम आत्म-तत्त्व को अस्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि उसकी अस्वीकृति में ही उसकी स्वीकृति हो जाती है। लेकिन यह केवल वाक्छल या देकार्त्त का मनोवैज्ञानिक सत्य नहीं, उससे भी आगे का है। वह तत्त्व जो शरीर, प्राण, मन का भी आधार-तत्त्व है, उसे किसी के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

अब एक छोटा-सा प्रश्न है कि जब आत्म-तत्त्व सबों में अतिव्याप्त है तो हम उसे क्यों नहीं जान लेते। शायद हम उसके लिए साधना या उपयुक्त साधन नहीं अपनाते। जल या वायु में छोटे-छोटे सूक्ष्म जीवों को देखने के लिए भी सूक्ष्म-दर्शक-यंत्र या दूर आकाश में देखने के लिए बड़ी शक्ति वाले दूरबीन की जरूरत होती है, फिर आत्म-दर्शन के लिए उपयुक्त यंत्रों का भी इस्तेमाल करना भूल जाते हैं। श्रवण, मनन और निदिध्यासन या पतंजलि का अष्टांगिक योग, या बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग या महावीर का ''सम्यक-दर्शन ज्ञान-चारित्र'' आदि अनेक मार्ग हैं। हर मनुष्य की प्रकृति-प्रवृत्ति दूसरों से कुछ भिन्न है। कोई ज्ञानात्मक प्रवृत्ति का है उसके लिए ज्ञानयोग, जो भावनाशील हैं उनके लिए भक्ति योग, जो कर्मप्रधान हैं, उनके लिए कर्मयोग है। जो ध्यान-प्रधान हैं, उनके लिए राज-योग का समुद्र है। कुछ तो चारों योगों का समन्वय करते हैं जिसे 'समग्र योग', या श्री अरविन्द 'पूर्णयोग' कहते हैं। मानव की प्रकृति की भिन्नता के कारण साधन और ध्यान की अनेकता स्वाभाविक है। यही आध्यात्मिक-स्वातंत्र्य है। लेकिन हम साधना के पथ पर चलते नहीं और दोष देते हैं अध्यात्म को।

हमारा दूसरा दुर्भाग्य है कि आश्रम विभाजन को अवैज्ञानिक तो बता ही देते हैं साधना के बिना अध्यात्म का चमत्कार प्राप्त नहीं होने पर इसकी आलोचना करते हैं। 'यम-निमय' की जलांजलि देते हैं और रात्रि में किसी मंदिर आदि में बैठकर ध्यान की साधना का अमृत खोजने लगते हैं। मेरा मानना है कि बिना नैतिक जीवन के आध्यात्मिक जीवन का रसास्वादन एक दिवास्वप्न है। पतंजलि ने भी राजयोग की साधना में प्रथम चरण में नैतिक जीवन के पंच महाव्रतों का पालन करने को बताया। योग के दूसरे चरण में 'नियम' में भी बहुत कुछ शारीरिक स्वच्छता, मानसिक ज्ञान की साधना के लिए स्वाध्याय एवं संतोष को नैतिक जीवन की कुंजी से जोड़ा गया है। फिर ध्यान की ओर सभी धर्मों का ध्यान है। बौद्धों की 'विपश्यना', जैनी का 'प्रेक्षाध्यान', महेश योगी का भावातीत ध्यान, महर्षि मेही का नाद बिन्दु ध्यान, आदि सभी एक ही अमृत-कलश के चरणामृत हैं। अतः ध्यान या साधना का भेद मानना ही व्यर्थ है। जैसे सभी नदियां गंगा सागर में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही अध्यात्म-साधना की सभी धारायें उस महासमुद्र में एक हो जाती हैं-''यथा नदीनां बहवो अम्बु वेगाः समुद्रमेवा भिमुखा द्रवन्ति।''

आध्यात्मिक साधन ही अध्यात्म की कसौटी है। यह प्रायोगिक अधिक, शाब्दिक कम है।

विश्व का इतिहास साक्षी है कि आध्यात्मिक साधन के कारण न केवल सुकरात, जनक, प्रभु ईसा मसीह, हजरत मुहम्मद एवं मंसूर, दधीचि तथा रन्तिदेव एवं लाखों ऋषि मुनि हुए हैं, बल्कि अनेक धुरंधर वीर और महावीर भी बने हैं। मानवता में उत्कृष्ट से उत्कृष्ट त्याग, बलिदान, परोपकार आदि दुर्लभ गुण हम आध्यात्मिक साधन सम्पन्न व्यक्तियों में देखते हैं। यही नहीं मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के उदात्त से उदत्त साहित्यकार, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक भी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि से अवतरित हुए हैं। पूर्णतः आध्यात्मिक व्यक्ति निर्वैर, निःस्वार्थ, निष्पक्ष और निर्भीक होते हैं। वे यद्यपि किसी सम्प्रदाय, राष्ट्र के नागरिक होते हैं किन्तु वे सुकरात की भाषा में किसी देश विशेष के अभिमानी नहीं, किसी जाति विशेष के बन्दी नहीं और किसी सम्प्रदाय विशेष के आग्रही नहीं होते हैं। वे विश्व-मानव और विश्व-नागरिक हैं।

अकसर लोग मान लेते हैं कि ऐसे दुर्लभ गुण ईश्वर-प्रदत्त होते हैं। यदि ऐसी बात हो भी, लेकिन इस विचार को आंख मूंद कर स्वीकार करना मानवीय पुरुषार्थ का खंडन है साथ-साथ इसमें दैववाद, भाग्यवाद की काली छाया है। मानव जन्म से न तो साधु के रूप में पैदा होता है, न दुष्ट के रूप में। वाल्मीकि एक डाकू थे, तुलसी और सूर शुरू में अत्यन्त कामासक्त थे, गांधीजी के जीवन की दुर्बलताएँ हम जानते हैं। लेकिन वही अपने पुरुषार्थ, अपनी साधना एवं किसी प्रभाव के कारण महान संत हो गये। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यदि हम पुरुषार्थ पर विचार करें तो हमें मानना होगा की अध्यात्म मुख्यतः मानवीय पुरुषार्थ, त्याग-तपस्या, जीवन-साधना पर निर्भर है। कुछ लोग यदि कहें कि अर्थ एवं काम किसी प्रारब्ध के फल होते हैं तो धर्म और मोक्ष को तो मानव पुरुषार्थ का ही प्रतिफल स्वीकार करना अधिक सुंदर है। फिर यह तो कर्मविज्ञान के अनुसार भी पुरुषार्थ की भूमिका सभी क्षेत्रों की भांति आध्यात्मिक-क्षेत्र में भी अहम है। अध्यात्म का उम्र से भी कोई विशेष सम्बन्ध नहीं हो सकता। भाग्यवाद या दैव को एकात्मभाव से स्वीकार करना मानवीय पुरुषार्थ का अपमान तो है ही इसमें अंधविश्वास भी परिपूर्ण है और इसमें निराशावाद भी कमाल का है। इससे तो एक निराशावादी भाग्यवादी जीवन-दर्शन का निर्माण होगा। धर्म के लिए अंतहीन नैतिक संघर्ष, एवं अनन्त त्याग चाहिए। ध्रुव, प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र, रतिदेव, दधीचि, सुकरात, ईसा, मंसूर, गांधी आदि पुरुषार्थवान थे। यदि अध्यात्म में पुरुषार्थ एवं साधना को हटा दिया जाए तो यह बौद्धिक व्यायाम से भी आलस्य जीवन-दर्शन का प्रतीक हो जायेगा। मानवीय पुरुषार्थ की शुद्धतम पराकाष्ठा ही आध्यात्मिक जीवन का चिह्न है। जिस प्रकार सतत् सावधनता नैतिक जीवन के लिए अपरिहार्य है उसी प्रकार सात्विकता एवं पुरुषार्थ का सातत्य अध्यात्म की कुंजी है। सतत् आध्यात्मिक साधना ही मोक्ष का साधन है। अध्यात्म न तो 'हारे→

सार्वजनिक धन की खुली लूट से देश बचाएँ

❑ संजीव सिंह ठाकुर

आजादी के बाद भारी निवेश से उद्योग लगाने का मकसद था, विदेशों पर निर्भर रहने के बजाय स्वदेश में जरूरी उत्पादों का निर्माण करना। जिससे रोजमर्रा की जरूरतें पूरी होने के साथ-साथ पढ़े-लिखे, कुशल, अर्द्ध कुशल लोगों को रोजगार मिले। लाखों लोगों की शहादत से मिली आजादी के कारण सभी में राष्ट्रवाद और ईमानदारी की भावना विद्यमान थी। फलस्वरूप सभी के सहयोग से देश काफी हद तक आत्मनिर्भर होता चला गया। समय के साथ जैसे-जैसे उपभोक्ता संस्कृति हावी होती गयी, पैसे की हवस के चलते राष्ट्रवाद और भारतीयता पीछे चली गयी। नेता, सरकारी अधिकारियों और उद्योगपतियों का गठजोड़ बनता चला गया। कोई उद्योग वास्तव में न चल पाने की स्थिति में सरकारी बैंकों द्वारा लिये कर्जे में रियायत के प्रावधान का दुरुपयोग होने लगा। कई उद्योगों को जानबूझ कर बीमार इकाई (सिक यूनिट) दिखाकर, तकनीकी उलझनों में फंसाकर सार्वजनिक धन को चूना लगाया जाने लगा। 1991 के उदारीकरण के बाद जहां येन केण प्रकारेण पैसा इक्ट्ठा करने के लिए उद्योगों को विदेशियों के हाथों बेचा जाने लगा। वहीं कारपोरेट घराने बैंकों से लिये हुए कर्जे को हजम करने लगे।

अगर कोई आम आदमी मोटर साईकिल या कार की 3000-4000 रुपये की किस्त न चुका पाये तो फाईनेन्स कम्पनी/बैंक के गुंडे आप के मोहल्ले में आकर गाली गलौज करने के साथ-साथ आप की गाड़ी भी उठाकर ले जा सकते हैं। लेकिन करोड़ों रुपये के कर्जे डकारने वाले कारपोरेट घरानों का कोई कुछ नहीं बिगाड़ता। इसकी एक बानगी देखिए। चेन्नई से प्रकाशित एक अंग्रेजी दैनिक के अनुसार बैंक कर्मचारियों के संगठन 'ऑल इंडिया बैंक एम्पलाईज एसोसिएशन' के सचिव 'सी.एच. वेंकटचलम् ' ने मुख्य चुनाव आयुक्त 'वी. एस. सम्पत' को लिखे पत्र में कहा कि कम-से-कम 50 ऐसे डिफाल्टर को चुनाव लड़ने से रोकें जिनके ऊपर बैंकों का कुल 40,000 करोड़ रु. से ज्यादा का कर्जा बकाया है। वेंकटाचलम् के शब्दों में हम हमेशा से यह मांग करते आये हैं कि जानबूझ कर डिफाल्टर बनने को आपराधिक मामला माना जाये। हमने मुख्य चुनाव अधिकारी को लिखा है कि आप एक विशेष प्रावधान करिये। जिसके तहत ऐसे उम्मीदवार चुनाव लड़ने से अयोग्य माने जायें। जो स्वयं या उनसे जुड़ी कम्पनियां डिफाल्टर हैं। उन्होंने यह भी कहा कि चुनाव आयुक्त को ऐसे लोगों की सूची दे दी गयी है। क्योंकि इनमें से कइयों के चुनाव लड़ने की सम्भावनायें हैं। ज्ञात हो कि ऐसे 50 लोगों में से एक वर्तमान सांसद, एक केन्द्रीय मंत्री और दो पद्म श्री पुरस्कृत व्यक्ति भी हैं। जिनके ऊपर 7800 करोड़ रुपये बकाया है।

पत्र में आगे कहा गया है कि बुरे कर्जे (जिनकी वापसी की सम्भावना बहुत कम है।) की राशि मार्च, 2008 में जहां 39,000 करोड़ थी। वहीं मार्च, 2013 में यह राशि बढ़कर 1,64,600 करोड़ हो गयी। मनमोहन सिंह के उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक धन की लूट कितनी तेजी से बढ़ी, इसका यह सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

उल्लेखनीय है 'किंगफिशर एयरलाइन्स', 'आरकिड कैमिकल्स एण्ड फार्मासेटिकल्स' ऐसे कर्जे वाली कम्पनियों में शामिल हैं। इनमें से पहली कम्पनी के मालिक विजय माल्या एक प्रसिद्ध शराब व्यापारी हैं। वह हर नये वर्ष पर अर्धनग्न लड़कियों का कैलण्डर छापने के लिए मशहूर हैं। उनके पास 18 महीने से अपने कर्मचारियों को वेतन देने के लिए पैसा नहीं है। परन्तु आई.पी.एल. की क्रिकेट टीम 'रॉयल चैलन्जर' के मालिक होने के नाते अपनी टीम और खिलाड़ियों के लिए उनके पास पैसे की कोई कमी नहीं है। जिसमें प्रसिद्ध खिलाड़ी 'युवराज सिंह' को 14 करोड़ में खरीदना भी शामिल है। ज्ञात रहे कि विजय माल्या की कम्पनी 'किंगफिशर एयरलाइन्स' के 18 महीनों से वेतन न पाने वाले कर्मचारियों ने क्रिकेटर 'युवराज सिंह' को लिखे खुले पत्र में प्रार्थना की थी कि लम्बे समय से वेतन न मिलने के कारण उनमें से बहुत से लोगों के घर और जेवरात गिरवी रखे जा चुके हैं। हमारा मालिक 'आई.पी.एल. टीम' और 'किंगफिशर कैलण्डर' पर तो खूब पैसा खर्च कर रहा है परन्तु हमें तनख्वाह देने के लिए उसके पास पैसा नहीं है।

जब तक सार्वजनिक धन की लूट से देश और आमजन के हित के विरुद्ध काम करने वालों का सामाजिक, राजनीतिक बहिष्कार नहीं होता तब तक ऐसे अनैतिक काम करने वाले राजनेता, सरकारी अधिकारी, उद्योगपति देश को बर्बाद करने के लिए प्रोत्साहित होते रहेंगे। ❑

→को हरिनाम है', 'न बुढ़ापे की बुड़भस है' और न तो अशक्त और आलसी का "दैव-दैव आलसी पुकारा" का जप है, यह तो ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों की पराकाष्ठा है। बिना ज्ञान के 'मुक्ति' नहीं हो सकती। "ऋते ज्ञान्ना मुक्ति।" उसी प्रकार भक्ति तो साकार प्रेम ही है—"सा त्वस्मिन परम प्रेमरूपा।" पुरुषार्थ के बिना जीवन संग्राम में विजय असंभव है। कर्म तो अध्यात्म का अमृत है—"कुर्व्व नेवेह कर्माणि। कर्मणा जिजिनिविशेष शतं समाः" एवं "त्वयिनान्य थे तो अस्ति न कर्म लिप्यते नरः" एवं "त्वचि नाअना थे तो दुस्ति न कर्म लिप्यते नरः।" 'ध्यान' तो "कर्म की कुशलता", "चित्त-वृत्ति के निरोध" एवं समधि का पूर्व-सोपान है। यदि हम इन सबों को एक माला में पिरो दें एवं स्वयं इसको आचरण में लावें तो वही अध्यात्म है। ❑

वन में बाघ और जन में बघेसुर

❑ संतोष कुमार द्विवेदी

मध्य प्रदेश के बाघ अभरारण्य बांधवगढ़ में आयोजित प्रथम ''जय बघेसुर उत्सव'' का संपूर्ण सौंदर्य मानो वसंत की सुषमा के साथ एकाकार हो गया। आयोजन के सारे रंग, प्रतिरूप व नाद मिलकर एक ऐसे दृश्य का सृजन कर गये, जैसे इसके पहले यहां किसी ने देखा, सोचा या महसूस नहीं किया था। आयोजन ने सौंदर्यबोध, संरक्षण और परिपोषण की एक नयी दृष्टि का निर्माण किया है जिसमें बाघ और जनजातीय कला एक-दूसरे के संरक्षण के निमित्त एवं पर्याय बनकर उभरे हैं।

जय बघेसुर बाघ केन्द्रित जनजातीय कला उत्सव को जिला पर्यटन विकास परिषद, उमरिया एवं एच.आई. डेस्टीनेशन मैनेजमेंट प्रा. लि. ने संयुक्त रूप से आयोजित किया था। सच तो यह है कि यह पूरा आयोजन चित्रकार आशीष स्वामी की कलात्मक प्रतिभा का रचनात्मक अवदान था जो परिकल्पना से आयोजन तक, हर स्तर पर बेमिसाल साबित हुआ। उन्होंने बाघ और बाघ केन्द्रित कला के संरक्षण के लिए लोक जीवन एवं लोककला परंपरा में गहरे पैठे ''बघेसुर'' को प्रतीक के रूप में लिया और उसे स्थापित करने में सफल भी हुए।

मध्यप्रदेश के विंध्य क्षेत्र में आदिवासी बाघ को देवता मानते हैं और बाघदेव, बाघेश्वर, बघेसुर व घमसेन बाबा के रूप में उनकी पूजा करते हैं। इस क्षेत्र के प्रत्येक गांव की सीमा पर बघेसुर की प्रतिमा स्थापित की जाती है। मान्यता है कि बघेसुर की स्थापना की गयी हो तो बाघ गांव की सीमा में नहीं घुसता। जनजातीय समुदाय शादी, विवाह और दीवाली जैसे खास मौकों पर अपने माल-मवेशी की रक्षा एवं जादू-टोना, तंत्र-मंत्र और टोने-टोटके आदि से बचाव के लिए बघेसुर बाबा की पूजा करता है। मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ की जनजातियां बाघ को गोत्र देवता के रूप में भी मानती और पूजती हैं। देखने में भले ही ग्रामीणों की यह मान्यता अंधविश्वास लगे, लेकिन पीछे जबर्दस्त वैज्ञानिक सोच छिपी है। अध्ययन बताते हैं कि बाघों का अपना अधिकार क्षेत्र होता है। ग्रामीणों ने अपने सतत् अवलोकन और अध्ययन से सैकड़ों वर्ष पूर्व न सिर्फ यह तथ्य पहचान लिया था अपितु अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय देते हुए सह अस्तित्व को पोषित करने वाला यह अद्भुत उपाय खोज निकाला था। गांव के एक बुजुर्ग आदिवासी ने बताया कि गांव की सीमा में बघेसुर की स्थापना वन के बाघ के लिए एक संदेश था कि यहां उसकी सीमा समाप्त हो जाती है।

यही तो लेकजीवन की खूबी है कि वह मिट्टी, घास, पेड़-पौधों, बनस्पतियों, पक्षियों, जीव-जंतुओं और सूरज-चांद-सितारों के साथ ही ज्ञात-अज्ञात हर चीज से अपना संबंध जोड़ लेता है और उनसे संवाद स्थापित कर लेता है। इतना ही नहीं वह हिंस्र जीव बाघ जब लोक जीवन में प्रवेश करता है तो किस्से, कहानियों, कहावतों और किंवदन्तियों से होते हुए उनकी आस्था, स्नेह और सम्मान का प्रतीक ''बघेसुर'' बन जाता है। तब वह मनुष्यों को डराने, उनके ऊपर आघात करने और उनके पालतू पशुओं का शिकार करने वाला हिंसक जंगली जानवर नहीं बल्कि उनका रक्षक देवता बन जाता है।

वन में बाघ और जन में बघेसुर यह वन और जन संस्कृति के अविच्छेद्य संबंध की अद्भुत दास्तान है और जय बघेसुर उत्सव उसका पुनर्पाठ है। इसके माध्यम से लोकजीवन और लोककला में रचे-बसे ''बघेसुर'' के विभिन्न कला प्रतिरूपों को खोजने, सामने लाने और उन्हें मान्यता दिलाने की अभूतपूर्व पहल की गयी है। इसमें बाघ केन्द्रित कला को आज तक सहेजकर रखने वाले लोक कलाकारों की कला-परंपरा को पहली बार वृहद पैमाने पर महत्त्व मिला। इसमें तकरीबन 350 आदिवासी कलाकार शामिल हुए। उत्सव में शामिल कलाकारों ने भित्ति व कैनवास पर विभिन्न चित्रशैलियों में बघेसुर के आकर्षक चित्र उकेरे और बांस, घास, मिट्टी, लकड़ी और धातु में अद्भुत शिल्पकारी की। शिल्पकारों-चित्रकारों के हाथों में अद्वितीय सृजन होता है। वे शिल्प की, चित्र की न सिर्फ भाषा गढ़ते हैं अपितु अभिव्यक्तियों को मनचाहा आकार देते हैं। उनकी कला में कितने ही अभिप्राय, प्रतीक और मिथक जीवंत हो जाते हैं।

उत्सव में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की बहुरंगी प्रस्तुतियां भी देखने को मिलीं। प्रदेश की सभी प्रमुख जनजातियों के लोकगीत एवं लोक नृत्यों का समावेश कर आयोजकों ने इसे रुचिकर और मनोरंजक बनाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। लोकनृत्य की गति व लयबद्धता सम्मोहित कर देती है। जिसे देख-सुनकर सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि आज अपनी जड़ों से उजड़ा-उखड़ा जनजातीय समाज सांस्कृतिक रूप से कितना समृद्ध है। ऐसा विविधवर्णी, उन्नत व उल्लसित करने वाला नृत्य एवं संगीत अभाव एवं उदासी में नहीं वरन आनंद के क्षणों में उपजता है। जनजातीय समाज एवं संस्कृति का अभिन्न हिस्सा रही ये लोककलाएं इस बात की गवाह हैं कि जनजातीय समाज में कभी अभाव और विवशता के स्थान पर आत्मनिर्भरता और आनंद तथा उदासी के स्थान पर बेफिक्री व आनंद का स्थायी भाव था।

आयोजन की परिकल्पना करने वाले प्रसिद्ध चित्रकार आशीष स्वामी का कहना है कि यह पूरा आयोजन समाज को स्मृति→

जड़ों में मट्ठा डालती शिक्षा

❑ किशनगिरी गोस्वामी

अंग्रेजी हुकूमत ने सन् 1935 में लॉर्ड मैकाले की जिस शिक्षा-पद्धित को भारत में लागू किया था, उसमें भारतवासियों को सदा के लिए वैचारिक रूप से गुलाम बनाने की भावना तो थी ही, साथ ही उसका अंतिम एवं महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था भारत की जनता में सुख-सुविधाओं की ऐसी होड़ जगाना, जिससे ब्रिटिश माल की अधिकाधिक खपत हो और नयी-नयी चीजों के लिए बाजार तैयार हो सकें। विदेशी भाषा के माध्यम से यही ''उपभोक्ता संस्कृति'' की नींव थी। उनकी धारणा थी कि उपभोक्तामूलक संस्कृति में पनपी भाषा अपने साथ सिर्फ संस्कृति ही नहीं, अपना बाजार भी लाती है। अंग्रेज यह जानते थे कि भारतीय भाषाएं जिस संस्कृति में पली-बढ़ी हैं, वे ''तेन व्यक्तेन भुंजिथा'' (त्याग कर भोगने) की संस्कृति है। इसलिए इस देश पर उपभोक्तावाद लादने के लिए उसी परिवेश में पली भाषा ही अधिक कारगर होगी। महात्मा गांधी का स्वाधीनता आंदोलन अंग्रेजी शासन के साथ-साथ इस उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुद्ध भी था। महात्मा गांधी पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित जीवन यानी और अधिक की आकांक्षा के बजाय पूरब की ''सहज संतुष्टि'' की संस्कृति के पक्षधर थे।

महात्मा गांधी ने भारतीयों में ''स्वदेशी'' भावना जागृत करने का भरपूर प्रयास किया था। किंतु आजादी के बाद स्वदेशी की यह भावना दिन ब दिन ढीली पड़ती गयी। मैकाले की इस अव्यवहारिक शिक्षा ने स्वदेशी (विशेषकर स्थानीय) मानसिकता समाप्त कर इसे बाजार के चलन के आधीन कर दिया। आज यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि यह शिक्षा किस कदर हमें अपनी जड़ों से विलग करने का काम करती है। एक ग्रामीण बालक को यह शिक्षा किस प्रकार उसके खान-पान, रहन-सहन व परिवेश से अलग कर देती है।

बचपन एवं किशोर वय के मुक्त बालक के रूप में मुझमें इस शिक्षा ने न जाने कब, शनैः-शनैः यह भाव भर दिया कि खान-पान की प्रकृति प्रदत्त समस्त सहज, सुलभ स्थानीय वस्तुएं खराब एवं हीन हैं। इसका उपयोग तो बेहद गरीब, अनपढ़, गंवार एवं असभ्य लोग ही करते हैं। अतः महज 18 वर्ष की कच्ची उम्र में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण (तब तक गांव में महज 5-7 लोग ही मैट्रिक कर पाए थे) कर अपने गांव के विद्यालय में ही शिक्षक बन जाने पर मैंने अपने घर-परिवार में क्षेत्रानुसार प्रकृति प्रदत्त स्थानीय वस्तुओं—केर, ग्वारफली, काचरा, मतीरा, कुम्मटिया, हेलारिया एवं सांगरी (राजस्थान के कल्प वृक्ष खेजड़ी का फल) इत्यादि न जाने कितनी स्थानीय वस्तुओं का उपयोग वर्जित कर दिया था।

इतना ही नहीं बल्कि मेरे माता-पिता द्वारा बड़े चाव से खाई जाने वाली छाँछ-रबड़ी, दलिया। जिसे स्थानीय भाषा में ''गाठ'' कहा जाता है एवं छाँछ से निर्मित अन्य वस्तुओं के उपयोग पर भी मैं नाक भौं सिकोड़ने लगा था क्योंकि इन वस्तुओं को घटिया मानने की हीन भावना मुझ में इस अधकचरी शिक्षा ने कूट-कूटकर भर दी थी। बाहर से आने वाले अतिथियों को भी इन वस्तुओं को परोसने में अपना अपराध समझता था। यही हाल मेरे रहन-सहन और पोषाक का भी रहा।

वैचारिक रूप से परिपक्व होने एवं गांधी तथा सर्वोदय साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् ही समझ पाया कि कुदरत ने हर क्षेत्र में मनुष्य ही नहीं बल्कि जानवरों तक के लिए स्थानीय परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार माकूल व्यवस्थाएं कर रखी हैं। ये स्थानीय वस्तुएं उस क्षेत्र के लोगों के लिए बाहर की वस्तुओं की बनिस्बत ज्यादा मुफीद एवं स्वास्थ्यवर्द्धक हैं। किन्तु इस (अ) शिक्षा ने स्थानीय जल,जंगल और जमीन से हमारा

→लोप से बाहर लाने और उसके सामर्थ्य को जगाने-झकझोरने का एक प्रयास है। गोंड़ी चित्रकला के सशक्त हस्ताक्षर मयंक श्याम ने इस आयोजन को प्रकृति और संस्कृति की हमजोली को मजबूत करने वाला सार्थक प्रयास बताया। वही वेंकट रमण सिंह श्याम ने इसे परंपरागत चित्र व शिल्प को नया क्षितिज देने वाला आयोजन करार दिया। लौहशिल्पी रामा अगरिया और ढोकराकला के गुणी जगदीश समर्थ ने कहा कि इस तरह के आयोजन कलाकार को बाजार से लड़ने की शक्ति और संयम प्रदान करते हैं। जालीवर्क में निपुण शिखर सम्मान प्राप्त कलाकार सुंदरी बाई का कहना है कि जय बघेसुर कला उत्सव द्वारा कलाकारों में आध्यात्मिक चेतना का निर्माण हुआ है। सच्चे अर्थों में यह आयोजन आजीविका के लिए नहीं, बल्कि आनंद के लिए था। बैगा चित्रकला को पहचान दिलाने वाली जुधइया बाई का कहना है कि जनजातीय समाज में कला व कलाकारों की कमी नहीं। जरूरत है प्रतिभा को पहचानने और प्रेरणा व प्रोत्साहन का वातावरण निर्मित करने की। जिला पर्यटन विकास समिति, उमरिया के अध्यक्ष व जिला कलेक्टर सुरेन्द्र उपाध्याय एवं एच.आई डेस्टीनेशन के डायरेक्टर सचिन शर्मा ने कहा कि यह आयोजन अगले वर्ष और भी वृहद रूप में आयोजित होगा। बांधवगढ़ के बाघ केन्द्रित पर्यटन को ''बघेसुर उत्सव'' एक नयी सौगात है। ❑

जुड़ाव समाप्त कर न सिर्फ भारत की ग्रामीण व्यवस्था को ध्वस्त किया है बल्कि जल स्वावलंबन एवं शिक्षा स्वावलंबन छीनकर हमें परावलंबी बना दिया है। चूंकि भारत गांवों में बसता है अतः हमारे ''ग्राम स्वावलंबन'' को जड़ से समाप्त करने की यह अंग्रेजों की एक कुटिल चाल थी और वे इसमें सफल भी हुए। मुझ जैसे न जाने कितने भारतीय उनकी इस चाल में फंसे होंगे? अब तो मुझे इसका अत्यधिक पछतावा है। मैं खान-पान की इन स्थानीय वस्तुओं का अब न सिर्फ स्वयं उपभोग करता हूं बल्कि नयी पीढ़ी एवं अतिथिजनों को कुदरत प्रदत्त इन स्थानीय वस्तुओं के अधिकाधिक उपयोग की वकालत भी करता हूं।

वर्तमान शिक्षा हमें यह नहीं सिखाती कि प्रकृति प्रदत्त यह स्थानीय वस्तुएं बेहद पौष्टिकता के साथ-साथ कई असाध्य रोगों को ठीक करने की क्षमता एवं गुणवत्ता रखती हैं। पश्चिमी मारवाड़ (राजस्थान) में उत्पन्न होने वाली ''सेंवण'' घास, विश्व की सर्वाधिक पौष्टिक घासों में से एक है। इसलिए रूस के कृषि वैज्ञानिक इसे अपने देश में उगाने हेतु प्रयासरत हैं या स्थानीय क्षेत्र की विभिन्न वनस्पतियां अनेक असरकारी दवाइयां बनाने के काम आती हैं या गाय के घी का ''पीलापन'' (गौरोचन) भैंस के घी से अधिक गुणकारी कहलाता है या मवेशी पालन का काम खेती में सहयोग के साथ-साथ जीवनयापन का एक बहुत बड़ा जरिया है आदि-आदि। यहां तो सब लोग देश के ''मेरुदण्ड'' गांवों को बेरहमी से उजाड़कर महानगर बसाने की अंधी दौड़ में लगे हुए हैं।

मुंशी प्रेमचंद ने तो मैकाले की इस शिक्षा को आरंभ से ही ज्ञान का केंद्र न मानकर ग्रेजुएट बनाने के कारखाने कहा था। यह कथन आज उससे कहीं अधिक प्रासंगिक है। डॉ. आनंद स्वरूप आनंदी के अनुसार यह शिक्षा नये समाज की रचना के लिए समर्पित कार्यकर्ता या साधक पैदा नहीं कर रही है। यह हमारी आकांक्षाओं, आवश्यकताओं एवं स्थानीय परिस्थितियों के एकदम उलट है। यह हमारे आत्मविश्वास और आचार-विचार का क्षय करने वाली है। रचना-धार्मिता, मौलिकता, संघर्षशीलता या तेजस्विता के लिए इस शिक्षा में कोई गुंजाइश ही नहीं है। यह मनुष्य के स्थान पर उत्पाद पैदा कर रही है।

इस मूल्यविहीन शिक्षा का जहर, पूरा देश लील रहा है। अफसोस कि हम सब गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं। इस शिक्षा में न तो जीवन संघर्ष शामिल है, न ही सभ्यता एवं संस्कृति की चिंतनधारा। बस विदेशी नकल से कारखानों के माल की तरह विद्यालयों से बच्चे निकल रहे हैं। मात्र पेट भरना सीखने के लिए जीवन के 20 अमूल्य वर्ष लगाने पड़ते हैं। पहले बच्चों को उनके मां-बाप से छीनकर लाओ, फिर उनकी जमा पूंजी उजाड़ कर दसवीं करवाओ, ताकि वह पुनः अपना पुश्तैनी धंधा न कर सके तथा अंत में बेरोजगार बनकर सड़कें नाप या असंतुष्ट रहकर नक्सली बने।

हमारी सरकार तो बेरोजगारी की इस समस्या को जनसंख्या वृद्धि के मत्थे मढ़कर मस्त है। शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन करना तो दूर रहा, इस पर विचार करने की भी उसकी तैयारी नहीं है। इसीलिए आचार्य राममूर्ति आयोग की रपट ठंडे बस्ते में पड़ी है। अतः शिक्षा में परिवर्तन का यह काम आखिर इस देश के लोग को ही आज और अभी करना होगा। स्थानीय परिस्थितियों एवं मांग के अनुसार शिक्षा नीति तैयार करनी होगी। श्रम को पुनः महत्त्व देना होगा। हमें स्वयं जागना व अन्य लोगों को जगाना होगा। तभी हम इस देश की जरूरतों के अनुसार भावी पीढ़ी को तैयार करने का सपना सच कर पाएंगे। ❑

जनता की राजनीति से अलिप्त नहीं रहा जा सकता

सत्ता और दल की राजनीति से अलग रहने की हमारी नीति आज भी ज्यों की त्यों कायम रहनी चाहिए, ऐसा मैं अवश्य मानता हूं। परन्तु क्या जनता की राजनीति में हमारी दिलचस्पी नहीं है। आज समाज में मुश्किल से ही प्रश्न होगा, जो कहीं न कहीं राजनीति को स्पर्श न करता हो या जिसे राजनीति कहीं स्पर्श न करती हो। ऐसे सारे सवालों से क्या हमें मुँह मोड़ लेना है। मेरी नम्र राय में स्पष्ट उत्तर है—नहीं। हम किसी पार्टी के सदस्य नहीं बनेंगे, किसी पद पर नहीं जायेंगे और चुनाव में खड़े नहीं होंगे। इतनी मर्यादा का पालन करते हुए हम समाज में एक सक्रिय भूमिका तो अवश्य ही अदा कर सकते हैं। इस प्रकार जनता की राजनीति से तो कोई भी जागरूक व्यक्ति अलग नहीं रह सकता। आज, अब सम्पूर्ण क्रांति के आन्दोलन के संदर्भ में तो सर्वोदय कार्यकर्ताओं की पहले से कहीं ज्यादा जिम्मेदारी है। सर्वोदय कार्यकर्ताओं को एक मौका मिला है कि वर्तमान परिस्थिति का लाभ उठाकर वे क्रांति के कार्य को आगे बढ़ायें। सर्वोदय कार्यकर्ता का मार्ग आज पहले से कहीं ज्यादा प्रशस्त हुआ है।

× × ×

जनता यह मानकर काम शुरू करे कि वह खुद सरकार है। संगठन बनाकर अपना अधिक से अधिक काम अपने हाथ में ले सकती है, और सरकार को अपने दैनन्दिन जीवन में हस्तक्षेप करने से रोक सकती है।

मैं चाहता हूं कि मेरा यह संदेश हर गांव और शहर में पहुंचे। मुझे पूरी आशा है कि सभी साथी इस काम में अपनी पूरी शक्ति लगायेंगे।

–जयप्रकाश नारायण

सांस्कृतिक प्रदूषण और लोकसंस्कृति

❑ डॉ. विमल कुमार पाठक

हमारी अपनी विशिष्ट संस्कृति रही है— भारतीय संस्कृति। हमारी अपनी अलग पहचान रही है, अलग सभ्यता रही है और अलग खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, कलात्मक अभिव्यक्ति तथा आनंद-उत्साह व्यक्त करने के तौर-तरीके भी। समूचे संसार में भारतीयता की अलग पहचान रही है। विगत सौ-सवा सौ वर्षों से विदेशों में जाकर मजदूरी से लेकर डॉक्टर, इंजीनियरी करने वालों, उद्योग-धंधे लगाकर उद्यमी बने लोगों, व्यवसायियों की भी अपनी भारतीयता के प्रति ललक, रुझान और भारतीय संस्कृति पर सौ जान फिदा लोगों के कारण विदेशों में भी भारतीयता की अच्छी पूछ-परख रही और भारतीय लोग वहां आकर्षण के केंद्र रहे। भारतीय महिलाएं जब अपने भारतीय परिधान साड़ी और ब्लाउज में, सलवार-सूट में विदेशों के बाजारों में जातीं, रेलगाड़ियों, विमानों में यात्राएं करतीं तो लोग सुखद आश्चर्य से, हर्षमिश्रित निगाहों से उन्हें देखते और सर्वांग ढंके परिधानों में सज्जित भारतीय नारियां उन्हें आदर्श और अनुकरणीय महिलाएं लगतीं। यही स्थिति पुरुषों की भी थी। भारतीय पुरुष आम विदेशियों की अपेक्षा अपने सरल-सहज परिधान और अच्छी आदतों के कारण उन विदेशियों को मोह लेते और भारतीय अस्मिता के प्रति उन्हें नत-मस्तक होने को प्रेरित करते।

ऊपर वर्णित स्थिति स्वतंत्रता प्राप्ति के पचीस-तीस वर्षों के बाद तक थी। संयोगवश हमारे देश में सिनेमा ने विभिन्न क्षेत्रों की तरह विदेशियों की नकल करना प्रारंभ किया। कहानी में, नृत्य में, गीत में और तदनुसार परिधान में भी विदेशियों की नकल की जाने लगी और ढँके तन की जगह खुले बदन की नायिकाएं, हास्य कलाकार, नर्तकियां, नर्तक आदि फिल्मों में आने लगे और भारतीय परिधान की शालीनता को ठेंगा (अंगूठा) दिखाने लगे। फिल्मों से फैशन का प्रसार-प्रचार तीव्रता से होने लगा और पहले देश के महानगरों में विदेशी रीति-रिवाज, तौर-तरीके, परिधान, खान-पान उच्च और मध्यमवर्गीय समाज में फैले, तत्पश्चात् बड़े नगरों में फैशन फैलने लगे। सिनेमाई फैशन ने न केवल भारतीय खान-पान, परिधान को बर्बाद किया, बल्कि भारतीय गायन, वाद्य वादन, रंग कर्म, लोककला, लोकनृत्य, लोकगीत और लोकजीवन को भी दूषित करने का जघन्य अपराध किया।

भारतीय रंगमंच के शानदार पाक्षिक या नौ-दिवसीय रामलीला, रासलीला और धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित नाटकों, एकांकियों, तमाशा, गम्मत, नाच, नौटंकी आदि को भी सिनेमाई अति आधुनिक प्रदर्शन ने निगलना आरंभ किया और धीरे-धीरे उसके जहरीले प्रभाव से हमारी नगरीय और ग्रामीण कलाएं प्रभावित होने लगीं। रही-सही कसर सन् 1970-75 के बीच टेलीविजन ने देश भर में फैलाव के साथ पूरी कर दी। फिल्मी विदेशी संस्कृति, जिसे मुंबइया संस्कृति, महानगरीय दिल्ली, कोलकाता, तमिलनाडु की संस्कृति भी कह सकते हैं, ने पूरे देश को अतिआधुनिकता की चपेट में ले लिया और उसी तड़क-भड़क, चकाचौंध में टी.वी. प्रभावित श्रोता-दर्शक झूमने लगे, ढलने लगे और पगलाने लगे।

मुझे खयाल आता है कि देश के प्रसिद्ध नाटककार और कहानीकार डॉ. शंकर शेष सन् 1980 के आस-पास जब रायपुर में देश का संभवतः दसवां दूरदर्शन केंद्र उद्घटित हुआ था, तब अपने गृह नगर बिलासपुर में दीपावली की छुट्टी मनाने मुंबई से आए हुए थे, तब मैं और अनुज डॉ. विनय पाठक भी दीपावली पर बिलासपुर में थे। हम लोग शंकर भैया के घर मुलाकात करने गए। बातचीत के दौरान उन्होंने कहा था, ''रायपुर में दूरदर्शन का आना छत्तीसगढ़ के लिए दुर्भाग्यजनक है।'' मुझे यह सुनकर दुःख हुआ था। मैंने कहा भी कि केंद्रीय सूचना प्रसारण मंत्री विद्या चरण शुक्ल के कारण सौभाग्यवश यह केंद्र यहां खुला है। देश के अनेक प्रसिद्ध नगरों से पहले रायपुर में इसका खुलना तो गौरव की बात है। हंसते हुए उन्होंने कहा था, ''तुम दोनों भाई छत्तीसगढ़ लोकसाहित्य संस्कृति और कला से करीब से जुड़े हुए हो। ये दूरदर्शन केंद्र इस छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक गरिमा को , लोकनृत्य, लोकगीतों को, यहां के पहनावे, श्रृंगार के आभूषणों को, छत्तीसगढ़ी बोली को, गम्मत नाचा को धीरे-धीरे निगल जाएगा और मुंबइया फिल्मी असर से समूचा छत्तीसगढ़ प्रभावित होकर अपनी खासियत, अपने अपनेपन, अपनी 'चिन्हारी' को खो देगा।'' तब मुझे डॉ. शंकर शेष की यह बात अच्छी नहीं लगी थी, लेकिन आज उनकी कही बात जब पचहतर-अस्सी प्रतिशत सच साबित चुकी है, तब मुझे भी लगता है कि इस टेलीविजन ने छत्तीसगढ़ से उसका अपनापन, उसकी 'चिन्हारी' को छीन लिया है।

अब न कहीं रामलीलाएं होती हैं, न कृष्णलीलाएं। रासलीलाओं की अपनी विशिष्टताएं समाप्त हो गयी हैं। दस-बारह फुट के भीम, हनुमानजी, शंकरजी, गरूणजी, अर्जुन आदि की मिट्टी की मूर्तियां अब सपनों में भी नहीं दिखलाई देतीं। ग्रामीण परिवेश में विवाह के अवसर पर गंड़वाबाजा की जगह बैंडबाजा, विवाह गीतों की जगह वाहियात फिल्मी गीतों की रिकॉर्डिंग साड़ी, लुगरा की जगह महानगरीय कन्याओं, महिलाओं के अजीबोगरीब वस्त्र, पुरुषों, बच्चों के फैशनेबल जींस, शर्ट, दूल्हे-दुल्हन के मौर की जगह राजस्थानी या पंजाबी चलन की पगड़ी, हल्की झालर वाली झूल दिखलाई देती हैं।

अब शहरों में तो होती ही नहीं, ग्रामों में भी न पंडवानी की कथा होती, न भरथरी न चनैनी की गाथा सुनी जाती है, न राऊत होता और न आदिवासी नृत्यों की छटा→

प्राकृतिक स्त्रोतों का संरक्षण एवं पर्यावरण

❑ डॉ. क्रांति कुमार सिन्हा

मनुष्य अपनी सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पृथ्वी पर ही निर्भर है। जीवन के लिए आवश्यक समस्त तत्त्व पृथ्वी पर ही विद्यमान हैं। अतः समग्र मानव जाति का विकास इन्हीं तत्त्वों पर आधारित है। इनके अभाव में मानव जाति व अन्य जीव-जंतुओं के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पृथ्वी पर ये समस्त आवश्यक तत्त्व प्राकृतिक स्त्रोत कहलाते हैं। वायु, जल, भूमि, पेड़-पौधों, खनिज पदार्थ तथा सूर्य का प्रकाश आदि महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक स्त्रोत हैं।

प्राकृतिक स्त्रोत के अंतर्गत दो प्रकार की संपदाएं आती हैं—नवीनीकृत प्राकृतिक संपदाएं-जल, वायु, वन, सूर्य का प्रकाश।

अनवीनीकृत प्राकृतिक संपदाएं -कोयला, तेल, प्राकृतिक गैस व कीमती धातुएं। नवीनीकृत संपदाओं से तात्पर्य है जिनका पुनः चक्रण किया जा सके व अनवीनीकृत संपदाएं वे हैं जिनका पुनः चक्रण नहीं किया जा सकता। अतः स्पष्ट है कि प्रकृति में विद्यमान अनवीनीकृत संपदाओं का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

पर्यावरण से तात्पर्य जीवधारियों के आस-पास के वातावरण से है, जिसमें वे निवास करते हैं। इसके अंतर्गत वायु, जल, प्रकाश, मृदा, पेड़-पौधे, समुद्र एवं समस्त जीव-जंतु आ जाते हैं। पर्यावरण पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व पृथ्वी के पारिस्थितिकी-तंत्र की संक्षिप्त चर्चा करना अनिवार्य है, जिससे पर्यावरण पर व्यापक प्रकाश डाला जा सके।

पारिस्थितिकी-तंत्र के दो महत्त्वपूर्ण घटक हैं—जैविक घटक और अजैविक घटक।

भूमंडल का समस्त जैविक समुदाय जैसे-जीव-जंतु या पेड़-पौधे अजैविक घटकों (अकार्बनिक व कार्बनिक) से क्रियात्मक रूप से संबद्ध रहते हैं।

जैविक समुदाय तथा अजैविक समुदाय में पारस्परिक क्रिया व पदार्थों का आदान-प्रदान होता रहता है। इनमें पारस्परिक निर्भरता बनी रहती है। सरल शब्दों में कहा जाए तो दोनों मिलकर एक ऐसा स्थायी तंत्र बनाते हैं, जो मशीन की तरह कार्य करता है। इसे ही पारिस्थितिकी-तंत्र कहते हैं। Eco-system शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम टेन्सले के अनुसार, 'प्रकृति में उपस्थित सजीवों (पेड़-पौधों, जीव-जंतु) एवं निर्जीवों की परस्पर या आपस की क्रियाओं के परिणामस्वरूप बनने वाला तंत्र पारिस्थितकी तंत्र कहलाता है।'

इस प्रकार किसी स्थान विशेष के जैविक घटक व अजैविक घटक की परिस्थितियों का योग पर्यावरण कहलाता है।

किसी भी पारिस्थितिकी-तंत्र में जैविक व अजैविक घटक के अलावा अपघटक (मृतोपजीवी) का कार्य भी महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि ये मृत जीवों के शरीर का अपघटन करके अपना पोषण करते हैं तथा जटिल कार्बनिक यौगिकों को सरल यौगिकों में परिवर्तित करते हैं। इस प्रकार ये किसी भी पारिस्थितिकी-तंत्र के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं।

(क) अजैविक घटक इसके अंतर्गत-1. अकार्बनिक घटक-मृदा, जल, वायु, खनिज तत्त्व आदि। 2. कार्बनिक घटक- कार्बोहाईड्रेट, प्रोटीन्स, लिपिड्स, अमीनो अम्ल आदि। 3. भौतिक घटक—जलवायुताप, प्रकाश, सौर ऊर्जा। पृथ्वी पर मुख्यतः दो प्रकार के पारि-स्थितिकी-तंत्र पाए जाते हैं—1.स्थलीय,2.जलीय।

सभी पारिस्थितिकी-तंत्रों की ऊर्जा का महत्त्वपूर्ण स्त्रोत सूर्य है—(ख) जैविक घटक के अंतर्गत-उत्पादक हरे पौधे, शैवाल। उपभोक्ता जीव-जंतु। अपघटक जीवाणु, कवक आदि।

जैसा कि हम सभी जानते हैं पृथ्वी के 71 प्रतिशत भाग में जल व 29 प्रतिशत भाग में स्थल है। स्थल का कुछ भाग पर्वत, पठार, हिमाच्छादित व वनाच्छादित है तो कुछ भाग मरुस्थल का भी है। सभी स्थलों का अपना-अपना पारिस्थितिकी-तंत्र है। साथ ही समुद्र व अन्य जलीय भागों का पारिस्थितिकी-तंत्र भी है, जो स्थलीय पारिस्थितकी-तंत्र से पृथक है।

यदि वायुमंडल में उपस्थित गैसों की प्रतिशत मात्रा पर नजर डालें तो हमें ज्ञात होता है कि नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, ऑक्सीजन 21 प्रतिशत व कार्बनडाइऑक्साइड 0.03 प्रतिशत व अक्रिय गैसों की मात्रा लगभग 1 प्रतिशत है। पर्यावरण में जैविक घटक के अंतर्गत आने वाले उत्पादक-हरे पौधे, प्रकाश संश्लेषण द्वारा सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में CO_2 और H_2O की सहायता से कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं। इस प्रक्रिया में जीवनदायिनी ऑक्सीजन गैस बाहर निकलती है, जो मानव जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार पेड़-पौधे पृथ्वी मंडल से CO_2 गैस ग्रहण कर प्रकृति में गैसों का संतुलन बनाए रखने में हमारी मदद करते हैं। मनुष्य अपनी तमाम भोजन संबंधी

→दिखलाई देती। गम्मत नाचा को तो सर्प सूंघ गया है। गरीब डंगजघा नाच वाले, विविध शारीरिक करतब दिखलाने वाले, बंदर, भालू का नाच दिखलाने वाले, देवार कलाकार आदि अब कहीं दिखालाई नहीं देते। दरअसल अब टेलीविजन ने लोगों को ऐसा मोह लिया है कि समूचा परिवार उसके मोहपाश में गिरफ्तार है। सच्ची कथाओं के नाम पर असली और आपराधिक रिपोर्ट, हत्या, बलात्कार, चोरी, डकैती, दहेज प्रकरण, बहुओं को प्रताड़ित करने, जलाने, मारने की घटनाओं से भरपूर सीरियल पारिवारिक गाथाओं के नाम पर परिवार को तोड़ने वाले धारावाहिकों, वाहियात नृत्यों, गीतों के कारण भावी पीढ़ी बर्बादी के कगार पर है। 'लिव इन रिलेशनशिप' को महत्ता प्रदान करने, प्रतिष्ठा की रक्षा की खातिर बेटी या बेटे या प्रेमी की हत्या जैसी घटनाओं के किस्सों को मिर्च-मसाला लगाकर प्रस्तुत करने की आजादी ने टेलीविजन के विभिन्न चैनलों को तो काटने की आजादी दे दी है, लेकिन दर्शकों के वैचारिक धरातल को कुंद करने की उनकी गंदी नीति भारत को भारत नहीं रहने देगी, यह स्पष्ट दिखलाई दे रहा है।

अंधानुकरण की यह प्रवृत्ति बढ़ती पर है, फलतः लोकसंस्कृति, भारतीय प्राचीन सभ्यता, देशभर की मातृभाषाएं और प्रदर्शनकारी लोककलाएं खतरे में हैं। अगर भारतीयता की रक्षा को जरूरी समझने की थोड़ी भी ललक हो तो जिम्मेदार लोगों को सही निर्णय लेना जरूरी प्रतीत होता है। ❑

आवश्यकताओं के लिए पेड़-पौधों पर आश्रित है। पेड़-पौधे मनुष्य की खाद्य संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ ऑक्सीजन चक्र, कार्बन डाइऑक्साइड चक्र व नाइट्रोजन चक्र का संतुलन बनाए रखने में सहायता करते हैं व जल-चक्र को सतत् बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

पारिस्थितिकी-तंत्र में जहां एक ओर, जल, वायु, पेड़-पौधे व सूर्य का प्रकाश नवीनीकृत प्राकृतिक संसाधन हैं, वहीं दूसरी ओर कोयला, प्राकृतिक गैसें तथा पेट्रोलियम एवं खनिज आदि अनवीनीकृत प्राकृतिक संसाधन भी हैं।

स्वच्छ व स्वस्थ पर्यावरण के लिए यह नितांत आवश्यक है कि पारिस्थितिक तंत्र के प्रत्येक घटक का संतुलन बना रहे। यदि प्रकृति के किसी भी घटक में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है, वह पर्यावरण के लिए घातक हो सकती है। प्रत्येक नवीनीकृत संपदा स्वयं के नवीनीकृत हेतु एक निश्चित प्राकृतिक चक्र पर निर्भर रहती है, इसकी भी कुछ सीमाएं होती हैं, यदि इसके संरक्षण की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो ये भविष्य में समाप्त भी हो सकती हैं।

जैसा हम सभी जानते हैं जल ही जीवन है। इसके अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आज पर्यावरणीय असंतुलन के कारण विश्व के कई देशों में खतरा उत्पन्न हो गया है। कहीं अतिवृष्टि के परिणामस्वरूप भीषण बाढ़ जैसे हालात उत्पन्न हो गये हैं तो कहीं अनावृष्टि से अकाल जैसे हालात हैं। तमाम वैज्ञानिक शोध इस ओर इशारा कर रही है कि यदि मनुष्य ने समय रहते जल संरक्षण की ओर ध्यान नहीं दिया तो आने वाले वर्षों में मीठे जल (पीने योग्य पानी) के लिए संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। आज भूमिगत जल स्तर बड़ी तेजी से नीचे जा रहा है। अतः इसके संरक्षण की ओर ध्यान देने की जरूरत ज्यादा है। इसके लिए मानव द्वारा भिन्न उपाय किए जा सकते हैं—

वर्षा के जल को पोखर तथा तालाब इत्यादि के माध्यमों से अथवा बांध आदि द्वारा एकत्र कर रखा जाना चाहिए। जल प्रदूषण को रोकने हेतु ठोस व कारगर कदम उठाए जाने चाहिए।

वायु संसाधन : वायु एक ऐसा संसाधन है, जिसके अभाव में मनुष्य व कोई भी जीव-जंतु जीवित नहीं रह सकता। पेड़-पौधे 02 तथा CO2 गैसों की प्रकृति में संतुलन बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। अतः वायु के संरक्षण हेतु हमें ज्यादा-से-ज्यादा पेड़-पौधे लगाने चाहिए। इसके साथ ही वायु संरक्षण हेतु निम्न उपाय किए जाने चाहिए।

प्रदूषण मुक्त वाहनों का प्रयोग।

ऐसे कल-कारखानों की स्थापना, जो कम-से-कम वायु प्रदूषण करें। कारखानों की चिमनियां ऊंची बनाई जाएं। वायु प्रदूषण फैलाने वालों के विरुद्ध कठोर कानूनी कार्रवाई की जाए।

वन संसाधन : मनुष्य को स्वस्थ वातावरण प्रदान करने में वनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। पेड़-पौधे प्रकृति में गैसों का संतुलन बनाए रखने के साथ-साथ वर्षा कराने में भी सहायक होते हैं। इसके साथ ही वे दुर्लभ जीव-जंतुओं का आवास भी होते हैं। अतः इनका संरक्षण अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य अपने जीवन की खाद्य आवश्यकताओं के अलावा इमारती लकड़ियां, औषधी तथा ईंधन आदि के लिए वनों पर ही निर्भर रहता है। अतः वनों के संरक्षण हेतु इनकी अंधाधुंध कटाई पर रोक लगाई जानी चाहिए और ज्याद-से-ज्यादा वन लगाए जाने चाहिए तथा जनता को इसके संरक्षण हेतु प्रेरित व प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

मृदा संसाधन : पृथ्वी की ऊपरी उपजाऊ सतह को मृदा या मिट्टी कहते हैं। वनों के कटाव तथा अत्यधिक वर्षा एवं पशुओं की अनियंत्रित चराई आदि से इसका ह्रास होता है। मृदा संरक्षण हेतु यह आवश्यक है कि वनों के कटाव को रोका जाए, क्योंकि पेड़-पौधों की जड़ें मृदा को बांधकर रखती हैं। मृदा संरक्षण हेतु पशुओं की चराई पर नियंत्रण किया जाना चाहिए। मृदा को विषाक्त होने से बचाने हेतु कम-से-कम कीटनाशकों व उर्वकों आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए, ताकि मृदा कम-से-कम प्रदूषित हो। रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर कंपोस्ट खाद आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

पृथ्वी पर उपस्थित अनवीनीकृत प्राकृतिक संपदा की बात की जाए तो खनिज के साथ इसके अंतर्गत ऊर्जा प्राप्ति के स्त्रोत कोयला, पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैसें इत्यादि आती हैं। इन्हें जीवाश्म ईंधन भी कहा जाता है, क्योंकि इनका निर्माण पादप एवं जंतुओं के अवशेष से हुआ है। इनके निर्माण में हजारों वर्ष लग जाते हैं। अतः इन प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग सूझ-बूझ व बुद्धिमानी से किया जाना चाहिए। इसी प्रकार पृथ्वी में उपस्थित खनिज भंडार तथा कीमती धातुओं का नवीनीकरण भी नहीं होता, प्रयोग के साथ-साथ इनके भंडार समाप्त होते जा रहे हैं। अतः अत्यंत सावधानीपूर्वक इनका उपयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि खनिजों के निर्माण की प्रक्रिया बहुत धीमी है। अतः इसके संरक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो भविष्य में ये भंडार समाप्त हो जाएंगे।

पर्यावरणीय प्रदूषण हेतु सर्वाधिक जिम्मेदार मानव ही है। इसका महत्त्वपूर्ण कारण तेजी से बढ़ता नगरीकरण व औद्योगीकरण है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तेजी से वनों का विनाश करता जा रहा है। जिस तेजी से वनों का ह्रास हो रहा है, उसकी तुलना में वृक्षारोपण कम हो रहा है। पारिस्थिकी-तंत्र के महत्त्वपपूर्ण घटक पेड़-पौधों के ह्रास के कारण वायुमंडल में गैसीय असंतुलन की स्थिति पैदा हो रही है, जिससे CO2 की प्रतिशत मात्रा बढ़ने के कारण ग्लोबल वार्मिंग जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है। ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ पिघलने से समुद्री जल-स्तर में बढ़ोतरी देखी गयी है, परिणामस्वरूप सुनामी जैसे हालात पैदा हुए हैं। अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि भी पर्यावरणीय असंतुलन का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। संसाधन सीमित होने व जनसंख्या बढ़ने के कारण भी पर्यावरण में असंतुलन जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः इसके नियंत्रण हेतु ठोस उपाय किए जाने चाहिए।

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं स्वस्थ व स्वच्छ पर्यावरण निर्माण हेतु हम सभी को अपनी-अपनी जिम्मेदारियां ईमानदारी से निभानी चाहिए। यद्यपि इसके संरक्षण हेतु सरकारी प्रयास किए जा रहे हैं व कानून भी बनाए गए हैं, फिर भी हमें नैतिक रूप से इसमें अपना सहयोग प्रदान करना चाहिए। यदि समय रहते इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो आने वाली पीढ़ियों के लिए गंभीर संकट पैदा हो जाएगा। ❑

धरती के धीरज की परीक्षा मत लीजिए

❑ अरुण तिवारी

मनुस्मृति के प्रलय खंड में प्रलय आने से पूर्व लंबे समय तक अग्नि वर्षा और फिर सैकड़ों वर्ष तक बारिश ही बारिश का जिक्र किया गया है। क्या वैसे ही लक्षणों की शुरुआत हो चुकी है? 'अलनीनो' नामक डाकिए के मार्फत भेजी पृथ्वी की चिट्ठी का ताजा संदेश तो यही है और मूंगा भित्तियों के अस्तित्व पर मंडराते संकट भी यही। अलग-अलग डाकियों से धरती ऐसे संदेश भेजती ही रहती हैं। अब जरा जल्दी-जल्दी भेज रही है। हम ही हैं कि उन्हें अनसुना करने से बाज नहीं आ रहे। हमें चाहिए कि धरती के धीरज की और परीक्षा न लें। उसकी डाक सुनें भी और तदनुसार बेहतर कल के लिए कुछ अच्छा करें भी।

यदि जीवन संचार के प्रथम माध्यम का ही नाश होना शुरू हो जाए, तो समझ लेना चाहिए कि अंत का प्रारंभ हो चुका है। यदि इस सदी में 1.4 से 5.8 डिग्री सेल्सियस तक वैश्विक तापमान वृद्धि की रिपोर्ट सच हो गयी और अगले एक दशक में 10 फीसदी अधिक वर्षा का आकलन झूठा सिद्ध नहीं हुआ, तो समुद्रों का जलस्तर 90 सेंटीमीटर तक बढ़ जाएगा, तटवर्ती इलाके डूब जायेंगे। इससे अन्य विनाशकारी नतीजे तो आयेंगे ही, धरती पर जीवन की नर्सरी कही जाने वाली मूंगा भित्तियां पूरी तरह नष्ट हो जायेंगी, तब जीवन बचेगा...इस बात की गारंटी कौन दे सकता है?

एटमोस्फियर, हाइड्रोस्फियर और लिथोस्फियर इन तीन बिना किसी भी ग्रह पर जीवन संभव नहीं होता। ये तीनों मंडल जहां मिलते हैं, उसे ही बायोस्फियर यानी जैवमंडल कहते हैं। इस मिलन क्षेत्र में ही जीवन संभव माना गया है। यदि इन तीनों पर ही प्रहार होने लगे...यदि ये तीनों ही नष्ट होने लगें, तो जीवन पुष्ट कैसे हो सकता है? परिदृश्य देखें तो चित्र यही है। कायदे के विपरीत आबूधाबी में बर्फ की बारिश हुई। जमे हुए ग्रीनलैंड की बर्फ भी अब पिघलने लगी है। पिछले दशक की तुलना में धरती के समुद्रों का तल 6 से 8 इंच बढ़ गया है।

सुनामी का कहर अभी हमारे जेहन में जिंदा है ही। हिमालयी ग्लेशियरों का 2077 वर्ग किमी का रकबा पिछले 50 सालों में सिकुड़कर लगभग 500 वर्ग किमी कम हो गया है। गंगा के गोमुखी स्रोत वाला ग्लेशियर का टुकड़ा भी आखिरकार चटक कर अलग हो ही गया। अमरनाथ के शिवलिंग के रूप-स्वरूप पर खतरा मंडराता ही रहता है। उत्तराखंड विनाश के कारण अभी खतम नहीं हुए हैं। तमाम नदियां सूखकर नाला बन ही रही हैं। भूजल में आर्सेनिक, फ्लोराइड के अलावा भारी धातुओं के इलाके बढ़ ही रहे हैं।

यह सच है कि अपनी धुरी पर घूमती पृथ्वी के झुकाव में आया परिवर्तन, सूर्य के तापमान में आया सूक्ष्म आवर्ती बदलाव तथा इस ब्रह्मांड में घटित होने वाली घटनाएं भी पृथ्वी की बदलती जलवायु के लिए कहीं न कहीं जिम्मेदार हैं। लेकिन इस सच को झूठ में नहीं बदला जा सकता कि आर्थिक विकास और विकास के लिए अधिकतम दोहन से जुड़ी इनसानी गतिविधियों ने इस पृथ्वी का सब कुछ छीनना शुरू कर दिया है।

जीवन, जैवविविधता, धरती के भीतर और बाहर मौजूद जल,खनिज, वनस्पति, वायु, आकाश...वह सब कुछ जो उसकी पकड़ में संभव है। दरअसल, नये तरीके के विकास...भोग आधारित विकास है। यदि यह बढ़ेगा तो भोग बढ़ेगा, दोहन बढ़ेगा, कार्बन उत्सर्जन बढ़ेगा, ग्रीन गैसें बढ़ेंगी, तापमान बढ़ेगा, साथ ही बढ़ेगा प्राकृतिक वार और प्रहार। घटेगी तो सिर्फ पृथ्वी की खूबसूरती, समृद्धि। यह तय है। फिर एक दिन ऐसा भी आएगा कि विकास, भोग, दोहन, उत्सर्जन तापमान सब कुछ बढ़ाने वाले खुद सीमा में आ जाएंगे। पुनः मूषक भव! यह भी तय ही है। अब तय सिर्फ हमें यह करना है कि पृथ्वी के जीवन की सबसे पुरानी इकाई तक जा पहुंचे इस संकट को लाने में हमारी निजी भूमिका कितनी है!

धरती को चिंता है कि बढ़ रहे भोग का यह चलन यूं ही जारी रहा तो आने वाले कल में ऐसी तीन पृथ्वियों के संसाधन भी इनसानी उपभोग के लिए कम पड़ जाएंगे। मानव प्रकृति का नियंता बनना चाहता है। वह भूल गया है कि प्रकृति अपना नियमन खुद करती है। धरती का चिन्तित होना इस प्रवृत्ति के परिणाम को लेकर भी है।

फिलहाल सरकारें क्या करेंगी या नहीं करेंगी, दुनिया के शक्तिशाली कहे जाने वाले देश जिस तरह दूसरे देशों के संसाधनों से आर्थिक लूट का खेल चला रहे हैं, बिगड़ते पर्यावरण के पीछे एक बड़ा कारण यह भी है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा था कि आर्थिक साम्राज्यवाद के फैले जाल में फंस चुकों का निकलना इतना आसान नहीं। लेकिन निजी भोग व लालच के जाल से तो हम निकल ही सकते हैं। आइए, निकलें! इसी से प्रकृति और राष्ट्र के बचाव का दरवाजा खुलेगा, वरना प्रकृति ने तो संकेत कर दिया है। आज का संकट साझा है....पूरी धरती का है, अतः प्रयास भी सभी को साझे करने होंगे। समझना होगा कि अर्थव्यवस्था को वैश्विक करने से नहीं, बल्कि 'वसुधैव कुटुंबकम' की पुरातन भारतीय अवधारण को लागू करने से ही धरती और उसकी संतानों की सांसें सुरक्षित रहेंगी।

यह नहीं चलने वाला कि विकसित देशों को साफ रखने के लिए वह अपना कचरा विकासशील देशों में बहाए। निजी जरूरतों को घटाए और भोग की जीवनशैली को बदले बगैर इस भूमिका को बदला नहीं जा सकता है। ''प्रकृति हमारी हर जरूरत को पूरा कर सकती है, लेकिन लालच किसी एक का भी नहीं।''-बापू का यह संदेश इस संकट का समाधान है। यह मानवीय भी है और पर्यावरणीय भी। हम प्रकृति से जितना लें, उसी विनम्रता और मान के साथ उसे उतना और वैसा ही लौटाएं भी। यही साझेदारी है और मर्यादित भी। इसे बनाए बगैर प्रकृति के गुस्से से बचना संभव नहीं। बचें, अनसुना न करें धरती का यह संदेश। ध्यान रहे कि सुनने के लिए अब वक्त कम ही है। ❑

कुदरती खेती के अनुभव

❑ प्रो. राजेन्द्र चौधरी

आम तौर पर यह माना जाता है कि रासायनिक खाद का प्रयोग न करने पर उत्पादन घटता है, विशेष तौर पर शुरू के सालों में। लेकिन यह पूरा सच नहीं है। अगर पूरी तैयारी के साथ कुदरती खेती अपनाई जाए (यानी कि पर्याप्त बायोमास-हर प्रकार का कृषि-अवशेष या कोई भी वनस्पति-पराली, पत्ते, इत्यादि-हों, और पूरे ज्ञान के साथ, समय पर सारी प्रक्रिया पूरी की जाय तथा अनुभवी मार्गदर्शक हों) तो पहले साल भी घाटा नहीं होता। अगर यह सब न हो, तो पैदावार घट सकती है परन्तु फिर भी तीसरे साल तक आते-आते उत्पादकता पुराने स्तर पर पहुंच जाती है। बाद के सालों में कुछ फसलों में उत्पादन काफी बेहतर भी हो सकता है और कुछ में थोड़ा कम भी रह सकता है। यहां यह समझना भी आवश्यक है कि हमें किसी एक फसल (मसलन गेहूँ) के उत्पादन पर ध्यान न दे कर, कृषि से प्राप्त कुल उत्पादन और आय को देखना चाहिए। इसके साथ-साथ कुदरती पद्धति में फसल की गुणवत्ता अच्छी होने से, बगैर किसी विशेष प्रमाण पत्र के भी, स्थानीय बाजार में बेहतर भाव मिल जाते हैं। खर्च तो काफी घट ही जाता है, पानी की जरूरत भी घट जाती है। ट्यूबवेल होने के बावजूद कुदरती खेती अपनाने वाले किसान केवल नहरी पानी से खेती कर रहे हैं।

कुल मिला कर अनुभव यह है कि कुदरती खेती अपनाने से लागत कम हो जाती है परन्तु (कुछ हद तक शुरू के समय को छोड़ कर) न तो उत्पादन में कमी आती है और न किसान की आय में बल्कि इस तरह की खेती उत्पादन और आय, दोनों में ज्यादा स्थिरता लाती है क्योंकि सूखे और बाढ़ आदि में भी फसल में उतनी ज्यादा कमी नहीं आती जितनी कि रासायनिक खेती में आती है। अगर उत्पादन में विशेष कमी नहीं होती तो उपभोक्ता को भी महंगी नहीं पड़नी चाहिए। (आज के दिन बगैर जहर के जैविक उत्पाद काफी महंगे मिलते हैं परन्तु इस के पीछे कम उत्पादकता मुख्य कारण नहीं है। आज भी छोटे किसानों को तो आमतौर पर जैविक उत्पादों के लिए बाजार भाव से लगभग 20 प्रतिशत ही अधिक कीमत मिल पाती है।)

यह सब मनगढ़ंत नहीं है। देश-विदेश के वैज्ञानिक अध्ययन इसका समर्थन करते हैं। रोम में 2007 में ''जैविक कृषि और खाद्य सुरक्षा'' पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। यह सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) द्वारा आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में 80 देशों, 24 शोध संस्थानों, 31 विश्वविद्यालयों, पाँच सरकारी संस्थाओं के 350 प्रतिभागी शामिल थे। इस अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि क्या ऐसी वैकल्पिक व्यवस्था हो सकती है जो 2030 तक कृषि उत्पादकता में 56 प्रतिशत की वृद्धि सुनिश्चित कर सके? इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की रपट के अनुसार वैकल्पिक कृषि में यह क्षमता है कि यह सुनिश्चित कर सके और विश्व को अन्न सुरक्षा उपलब्ध करा सके। न केवल इतना, अपितु पर्यावरण को भी कहीं कम नुकसान पहुंचाए।

हमारे देश में भी महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक आदि राज्यों में बड़े पैमाने पर किसान इस खेती को सफलतापूर्वक अपना चुके हैं। भारत सजीव कृषि समाज के सहयोग से प्रकाशित पुस्तक में ऐसे हजारों किसानों के अनुभव, नाम, पते और फोन नम्बर इत्यादि दिये हुए हैं। चौथाई एकड़ भूमि में पांच सदस्यों का परिवार 'मौज कर सके', ऐसे उदाहरण भी हैं। हैदराबाद के एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध संस्थान में (भूतपूर्व) प्रमुख वैज्ञानिक डॉक्टर ओम प्रकाश रूपेला (जो हरियाणा मूल के हैं) द्वारा 1999 में शुरू किये गये एक लम्बी अवधि के 2.5 एकड़ में किये गये तुलनात्मक अध्ययन में यह पाया गया कि किसान को रासायनिक खेती के मुकाबले कुदरती खेती में ज्यादा फायदा होता है। विशेष ध्यान देने वाली बात यह है कि यह परिणाम तब आये हैं जब जैविक और रासायनिक दोनों तरह के उत्पाद के लिए एक ही बाजार मूल्य लगाया गया।

पंजाब में भी कई साल पहले से शुरुआत हो चुकी है। हरियाणा में पूरी तरह से जहर रहित खेती के उदाहरण, खास तौर पर छोटे किसानों के उदाहरण, अभी कम हैं, परन्तु कई जगह टुकड़ों में वैकल्पिक खेती हो रही है। कहीं बिना कीटनाशक खेती हो रही है, तो कहीं बिना रासायनिक खाद की खेती हो रही है। जींद जिले में कृषि वैज्ञानिक डॉ. सुरेन्द्र दलाल की अगुआई में कपास के कीटों की पहचान का काम कई सालों से चल रहा है। इसके चलते जींद के निडाना और आस-पास के गांवों में कई किसानों ने कपास में, जिस में आमतौर पर सब से ज्यादा कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है, कीटनाशकों का प्रयोग बंद कर दिया है। 2010 की खरीफ की बुआई से हरियाणा में भी कई जगह कुदरती खेती के प्रयोग शुरू हो गये हैं। (कुछ संदर्भ सामग्री और किसानों का विवरण इस पुस्तिका के अंत में है। अगर आप और जानकारी चाहें या इन किसानों से मिलना चाहें तो सम्पर्क करें।)

हां, एक दिक्कत तो है। इस तरह की कुदरती खेती सारा साल खेत में देखभाल मांगती है। शुरू में यह ज्यादा मेहनत भी

मांगती है परन्तु समय गुजरने के साथ श्रम की जरूरत कम हो जाती है (इसलिए इसे 'कुछ भी न करने वाली खेती' भी कहा जाता है) वैसे भी अगर शुरू में यह खेती ज्यादा मेहनत मांगती है तो इसका मतलब यह है कि गांव में रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, बेरोजगारी कम होती है। अगर पूरे साल खेत में काम रहता है, तो मजदूर मिलने भी आसान हो जाते हैं। परन्तु दूर शहर में रह कर खेती कराने वाले या अंशकालीन किसान के लिए यह थोड़ा मुश्किल पड़ता है। केवल नौकरों के भरोसे खेती करने वालों के लिए यह उतनी अनूकूल नहीं है जितनी की वर्तमान रासायनिक खेती। परन्तु शायद यह इस विधि का दोष न हो कर गुण ही है कि खुद हाथ से करने वाला ज्यादा फायदे में रहता है। ❑

साधन और साध्य

मार्क्सवाद में कैसे ही साधन क्यों न हों, यदि उनसे सामाजिक कार्य के उद्देश्य की पूर्ति होती है, तो वे अच्छे साधन ही समझे जाते हैं। मार्क्सवाद नैतिक मूल्यों में विश्वास नहीं रखता। राजनीतिक आचरण की बुनियाद सब जगह इसी सिद्धान्त पर टिकी है कि साध्य की पूर्ति हो, तो फिर साधन कैसे भी हों। ऐसा बहुत कम होता है, जब महात्मा गांधी की तरह कोई महान आत्मा राजनीति में कदम रखती है तब राजनीति में नैतिक मूल्यों का प्रवेश होता है।

रूस में निन्दित साधनों से निन्दित साध्यों की निष्पत्ति हुई। खास तौर से जब अपने विरोधी नेताओं को खतम करने की प्रक्रिया चल रही थी, उस समय भयंकर से भयंकर जुर्म करने के लिए जिन घृणित साधनों का उपयोग किया गया, मार्क्सवादी क्रांतिकारी नीति के विरुद्ध मेरा मन बगावत कर उठा और मैं यह सोचने के लिए विवश हो गया कि क्या बुरे साधनों से कभी भी शुद्ध साध्यों की प्राप्ति हो सकती है।

–जयप्रकाश नारायण

गतिविधियां एवं समाचार

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस :

करनाल जिला सर्वोदय मंडल और युवा ग्रामीण विकास समिति, गढ़ी भरल ने 8 मार्च, 2014 को ग्राम नसीरपुर, जिला करनाल में विश्व महिला दिवस पर स्त्री व पुरुषों की सभा का आयोजन किया। गांव की कृष्णा देवी, राजो देवी, संगीता, सुनीता और रूपा देवी के प्रयास से बहनों की बड़ी संख्या में भागीदारी हुई। भाइयों को सभा में लाने का काम सर्वोदय मंडल के श्री मुस्लिम चौहान ने किया और सहयोग में ग्राम नसीरपुर के युवा साथी, ग्राम पंच श्री मामुराम चौहान, श्री रामपाल, श्री शकील अहमद और रामरिख सैनी ने भरपूर सहयोग किया। मुख्य अतिथि स्पोर्ट अधिकारी सुश्री शोभा सोरवी और जिला युवा सांस्कृतिक संयोजक श्री योगेन्द्र सिंह ने संबोधित किया। इस अवसर पर क्षेत्र में उत्तम कार्यों के लिए श्री मुस्लिम चौहान आदि ने मिलकर पुरस्कार भी दिये। **–मुस्लिम चौहान**

भूदान यज्ञ जयन्ती समारोह :

18 अप्रैल, 2014 को जिला सर्वोदय मंडल, बरेली के तत्त्वावधान में ओमप्रकाश भाई के निवास स्थान पर श्री गांधी मोहन की अध्यक्षता में भूदान का समग्र दर्शन कविता के साथ भूमिदान यज्ञ की 53वीं जयन्ती का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

विकल्प संस्था के अध्यक्ष राजनारायण गुप्ता ने भूमि अधिकार राष्ट्रीय जनसंवाद यात्रा का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि भूमि माता है, अन्न-वस्त्र देने वाली माता का क्रय-विक्रय बंद होना चाहिए। 13 अप्रैल जलियाँवाला बाग दिवस पर 'लायेंगे इन्कलाब' कविता सुनाकर सबको भावविभोर कर दिया। शहीदों को श्रद्धांजलि समर्पित की गयी।

कार्यक्रम में सर्वश्री जगदीश निमिष, गंगाराम, आनंद स्वरूप दुबे, मोतीराम अग्रवाल, रजत कुमार, विमला वैश्य, ओमप्रकाश आदि ने भूमिदान यज्ञ आंदोलन की व्यवहारिकता पर अपने विचार व्यक्त किये।

गांधी मोहन ने अध्यक्ष पद से संबोधित करते हुए कार्यक्रम में सहयोग करने के लिए धन्यवाद दिया। श्री जे. एस. भटनागर तथा श्री सत्यप्रकाश अग्रवाल के निधन पर दो मिनट का मौन रखकर दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की गयी।

कार्यक्रम का संचालन मंत्री श्री भगवान सिंह दीक्षित ने किया। **–ओमप्रकाश भाई**

न्याय मंदिर में खुली रिश्वत :

जिला एवं सत्र न्यायाधीश जनपद, मेरठ को पत्र लिखकर एवं प्रत्यक्ष मिलकर कहा है कि आप समर्थ हैं, इस रिश्वत का चलन अदालतों में बंद कर सकते हैं। अपने कर्मचारियों को मना कर दें कि वह अवैध धन की वसूली न किया करें और बाहर जो वादी बैठे होते हैं उन्हें बुलाकर कहें कि कोई रिश्वत नहीं दें। ऐसा करने से खुली रिश्वत की रोकथाम हो जायेगी।

खुली रिश्वत को रोकने की आपने कोई कार्यवाही नहीं की तो हम आपके न्यायालय में राम-नाम का कीर्तन करेंगे, उससे आपको रिश्वत रोकने का बल मिलेगा। **–कृष्ण कुमार**

भूल-सुधार

'सर्वोदय जगत', 16-31 मई, 2014 के अंक में पृष्ठ 10 पर 'सर्व सेवा संघ की नयी कार्यकारिणी' प्रकाशित हुई है। उसमें निम्न नाम छूट गये हैं :

श्री रमण कुमार : संयोजक : समानधर्मी संस्थाओं का समन्वय
श्री संजय सिंह : अध्यक्ष : मध्य प्रदेश सर्वोदय मंडल (पदेन सदस्य)
श्री अमरनाथ तिवारी : अध्यक्ष : पंजाब सर्वोदय मंडल (पदेन सदस्य)

इस भूल के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

–शेख हुसैन,
महामंत्री, सर्व सेवा संघ

जयप्रकाश नारायण की दो कविताएँ

(एक) घिसटता जीवन

निस्तेज, उल्लासहीन, म्लान
वह घिसटती है
घर में घायल तितली के समान।
दिन लाते हैं उसके लिए कठिन काम
देह और आत्मा को कर देते जो क्लान्त।
और रातें लाती हैं पुरुष की स्वार्थसनी क्रूरताएँ।
'मीठी, नन्हीं औरत'
कहते हैं अड़ोसी-पड़ोसी सारे
करुण मुसकान के साथ मुँह फेर लेती है वह।
या कभी लेती है लम्बा रहस्य-भरा निःश्वास।
जब कभी होती है अकेली वह
तब अपने घर के अँधेरे कोने में छिपकर
जब उसका नन्हा, छठा,
चूसता है भूख से उसकी तरुण पर चुक गयी छातियों को,
तब वह सोचती है।
वह सोचती है सुख-चैन से सूनी रातों के बारे में,
एक सी, प्राणहीन, प्रेमहीन घड़ियों के बारे में,
उसके लिए निजका अर्थ है, पत्नीत्व के कर्तव्य का पालन।
छह-छह प्रसूतियाँ और टूटा-फूटा तन-मन।
वह सोचती है, छोटी और बेतरतीब सामान से ठँसी,
बिना हवा और बिना उजाले वाली अपनी कोठरी के बारे में,
अंग-अंग को जकड़ लेने वाले अपने आँगन के बारे में,
जहां से कितनी उत्कण्ठा के साथ देखा है उसने
बादलों को घिरते और बिजली से
उस नीले सँकरे पथ को चमकते, जो उसका आकाश है।
वह सोचती है इन सबके बारे में।
दूर पर जाने-आने वालों का शोर टकराता है उसको कानों से,
बाहर की दुनिया की रंग-बिरंगी तसवीरें
उभर-उभर आती हैं उसके मन में।
पलकें भींग आती हैं उसकी, काँप उठते हैं उसके अंग-अंग
चौंक कर उठ बैठती है वह, चाहती है, सोचना छोड़ दे।
बालक जाग उठता है और दावा करता है ऊँची आवाज में अपने हक का।
यंत्र की-सी गति से वह खोल देती है अपनी छाती।
मानों छापा मारने के लिए छिपे बैठे हों पांच बालक
सहसा दिखायी देते हैं, वे आंखों के सामने।
सौ-सौ गधा-मजूरियां अपनी चिल्लपों मचाती हैं।
और उसके कर्तव्यों को कोल्हू फिर घूमने लगता है।
वह फिर अपने घर में घिसटने लगती है,
निस्तेज, उल्लसहीन, म्लान! ❑

(दो) मेरा जीवन

जीवन विफलताओं से भरा है,
सफलताएं जब कभी आयीं निकट,
दूर ठेला है उन्हें निज मार्ग से।

तो क्या वह मूर्खता थी?
नहीं।

सफलता और विफलता की
परिभाषाएँ भिन्न हैं मेरी!

इतिहास से पूछो कि वर्षों पूर्व
बन नहीं सकता प्रधानमंत्री क्या?
किन्तु मुझ क्रांति-शोधक के लिए
कुछ अन्य ही पथ मान्य थे, उद्दिष्ट थे,
पथ त्याग के, सेवा के, निर्माण के,
पथ संघर्ष के, सम्पूर्ण क्रांति के।

जग जिन्हें कहता विफलता
थीं शोध की वे मंजिलें।

मंजिलें वे अनगिनत हैं,
गन्तव्य भी अति दूर है,
रुकना नहीं मुझको कहीं
अवरुद्ध जितना मार्ग हो।
निज कामना कुछ है नहीं
सब है समर्पित ईश को।

तो, विफलता पर तुष्ट हूं अपनी
और यह विफल जीवन
शत-शत धन्य होगा,
यदि समानधर्मा प्रिय तरुणों का
कण्टकाकीर्ण मार्ग
यह कुछ सुगम बन जावे! ❑

(चण्डीगढ़ के कारावास के दिनों में 9 अगस्त, 1975 के दिन लिखी गयी रचना।)

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1500